सभासद चुना, उस समय गवर्नमेण्ट ने सहर्ष आप को यह पद देही दिया और सदैव म्युनिसिपेलिटी के कामों में आपकी सम्मति को बहुमूल्य जान वह उस पर ध्यान देती रही। इसी बीच लखनऊ में पानी की कल का प्रस्ताव प्रारम्भ हुआ। म्यूनिसिपेल कमेटी में दो दल हो गए। एक पानी की कल बनाए जाने का पक्षपाती, दूसरा उसका विरोधी। यद्यपि पक्षपाती दल के सहायक सब राजकर्मचारी थे और बहुतेरे अवैतनिक स्वतंत्र सभासद भी उसी प्रस्ताव के समर्थक थे; परन्तु बाबू गङ्गाप्रसाद जी ने निश्शङ्क हो अपने छोटे से मित्रदल के साथ उस प्रस्ताव से विरोध किया और वे प्रजा के विचार तथा म्यूनिसिपेलिटी की वास्तविक दशा को स्वच्छन्दता से गवर्नमेण्ट के कर्मचारियों पर प्रगट कर प्रजा को प्रीति के भागी हुए। सन् १८९९ में नेशनेल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के लिये अवधप्रान्त निश्चय हुआ। मदरास, बम्बई, बङ्गाल, पञ्जाब, मध्यप्रदेश, बरार, पश्चिमोत्तर देश, सभी कांग्रेससम्बन्ध में अपना उत्साह दिखा अवधप्रान्तीय प्रतिनिधियों को स्वागत कर चुके थे और एक बार ही नहीं कई एक बार। अब अवध को सब बार का उत्साह एक ही बार में दिखाना था। परन्तु यहां उत्साह कैसा? यहां तो कांग्रेस के विपक्षियों का दल तथा कोट था। ऐण्टी-कांग्रेस ने अपनी तरुणाई का बल यहां ही तो दिखाया था। तालुकेदारों का दल, कांग्रेस के नाम से कानों पर हाथ रक्खे हुए, खैरख्वाही का खिलअत पहिरनेहारे, अंगरेज़ी न जानने पर भी ऐण्टी, ऐण्टी, ऐण्टी का लटका अपने चूरन की बहंगी के साथ बोलनेहारे,—इस पर भी दैव की मार कि अकाल का दुःख, अन्न धन की कमी, प्लेग के भय से स्थान नियत किए जाने में राजकर्मचारियों का असमंजस, पुराने मित्रों में से भरोसे के ही बहुतेरे लोगों की अकृपा,— संक्षेप यह कि "दुर्बलो दैवघातकः" की दशा हो रही थी। ईश्वर भला करे हमारी प्रजा के प्यारे सर एण्टनी मेकडानेल महोदय का, जो ऐसी दशा में केवल एक निर्बल को बलराम जान पड़ते थे। ऐसे पीन साधनों के रहते हुए भी इस प्रान्त की कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा ने प्रबन्ध का समस्त भार बाबू गङ्गाप्रसाद जी वर्मा पर डाल उन्हें सेक्रेटरी नियत किया। पाठको! विचारिए यह भार कैसा कठिन भार था। दो दो समाचार पत्रों का सम्पादन करना और अपने निज के महत कार्यभार के रहते हुए इस गुरुतर भार का सम्हालना बाबू गङ्गाप्रसाद जी ही का कार्य था और जिस उत्तमता से आपने इस कार्य को सम्पादन कर सर्वसाधारण की दृष्टि में प्रतिष्ठा प्राप्त की है, उसका उल्लेख करना केवल पृष्टपेषण मात्र है। एक बात यहां पर और कहने योग्य है कि जब आप कांग्रेस के इस महान कार्य को सन् १८९९ ई० में सम्पादन कर रहे थे, उसीके साथ ही साथ आप सर्वसाधारण के उपकारार्थ निज व्यय से एक रीडिंग लाइब्रेरी बनवा रहे थे और कांग्रेस के अधिवेशन के हो चुकने पर आपने पंद्रहवीं कांग्रेस के सुप्रसिद्ध जगद्विख्यात सभापति श्रीयुत बाबू रमेशचन्द्र दत्त के सुयशसम्पन्न करकमलों से उस लाइब्रेरी को खुलवाया था। लखनऊ के नगर में बहुधा लोगों को इस लाइब्रेरी द्वारा समाचारपत्रों के पढ़ने का बहुत ही सुबीता हो गया है। आपकी धर्मरुचि विशेषतः सन्तमत की ओर है और साधुसंगत आप विशेष कर रखते हैं। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार तथा व्यवहार में आप सदैव तत्पर रहते हैं और अहर्निशि उनके प्रचार की युक्ति सोचा करते हैं। वर्तमान समय में आपने विशेष उद्योग कर लखनऊ में बर्तन बनाने की एक कल का कारखाना मेटल वर्क्स नामक अपने मित्रों की सहायता से स्थापित किया है और ऐसी आशा की जाती है कि यह कारखाना बहुत ही शीघ्र उन्नति कर दूसरे लोगों के लिये उदाहरणस्वरूप होगा। हमारे पाठक महाशयों पर आपकी उदारता इसीसे प्रगट हो जावेगी कि

यद्यपि आपके दो समाचारपत्रों में से एक पत्र हिन्दोस्थानी नामक उर्दू का पत्र है और उर्दू पढ़नेहारी प्रजा में बहुत प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है, तथापि जिस समय इस देश में अदालतों के अन्तर्गत नागरी अक्षरों के प्रवेश किए जाने का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उस समय आपने निस्पक्षता पूर्वक उस आन्दोलन में अपनी सहानुभूति प्रगट की और जब श्रीमान् सर एण्टनी मेकडानल महोदय के प्रस्थान के समय में उन्हें धन्यवाद प्रदान करने के लिये श्रीमान द्विजराज महाराज आनरेबल सर प्रतापनारायण सिंह जू देव बहादुर, के० सी० आइ० ई०, अवधनरेश के सभापतित्व में एक डेप्युटेशन नागरीहितैषियों की ओर से गया था, उस डेप्युटेशन के आप एक प्रतिष्ठित सभ्य थे। सत्य तो यों है कि आपके चरित्र ऐसे उदाहरणीय हैं कि जो नवयुवक उनका अब अनुकरण करते हैं, वे लाभ के भागी अवश्यमेव होते हैं। आप व्यर्थ के कामों से सदैव पृथक रहते हैं और संक्षेप यह कि अपनी दृढ़ता, साहस, विशाल बुद्धि, गाम्भीर्य तथा सच्चरित्रों के कारण इस प्रान्त के छोटे और बड़े सब प्रकार के लोगों के विश्वासपात्र हो रहे हैं। विद्यार्थियों के एकमात्र हितैषी और सदुपदेष्टा, प्रजा के स्वतन्त्र विचारों के प्रगट करनेहारे प्रतिनिधि और राजनैतिक विषयों के पारदर्शी तथा आन्दोलन करनेहारों के अग्रणी एक मात्र आपही हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह इन परोपकारी महानुभाव को चिरायु करें।

एक मित्र

"रासो" शब्द

हिन्दी भाषा का सबसे प्राचीन ग्रन्थ "पृथ्वीराज रासो" है। कुछ पढ़े लिखे महानुभाव उसी "रासो" शब्द पर अनेक प्रकार की युक्तियां लगाते है और वास्तव में यह बात अब तक स्पष्ट न हुई कि यह शब्द "रासा", "रासो" अथवा "रासौ" इन तीनों में से क्या है, इसका शुद्धरुप क्या है और यह किस भाषा का शब्द है और किस अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन बातों का जान लेना आवश्यक है। अतएव हम पहिले इस विषय पर पांच महाशयों की सम्मति यहां पर उद्धृत करके तब अपना मत लिखेंगे।

पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या जी, जिन्होंने पृथ्वीराज रासो के एक खंड को छपवाया है, और जो वास्तव में इसके पूर्ण ज्ञाता हैं, लिखते हैं—हिन्दी "रासौ" शब्द संस्कृत "रास" अथवा "रासक" से है और संस्कृत भाषा में "रास" के "शब्द, ध्वनि, क्रीड़ा, शृङ्खला, विलास, गर्ज्जन, नृत्य और कोलाहल आदि" के अर्थ और "रासक" के "काव्य अथवा दृश्यकाव्यादि" के अर्थ परम प्रसिद्ध हैं। मालूम होता है कि ग्रन्थकार ने संस्कृत "भारत" शब्द के सदृश "रासौ" शब्द को भावार्थ से महाकाव्य के अर्थ में ग्रहण कर प्रयोग किया है। यह "रासौ" शब्द आज कल की ब्रजभाषा में भी अप्रचलित नहीं है, किन्तु अन्वेषण करने से वह काव्य के अर्थ के अतिरिक्त अन्य अनेक अर्थों में भी प्रयोग होता हुआ विद्वानो को दृष्ट आवेगा। जैसे—"हमने चौदै के गदर को एक रासौ जोड़यौ है—कल बहादुरसिंघ जी की बैठक में बंदर ने गदर कौ रासौ गायो हो—फिर मैंने भरतपुर के राजा सूरजमल को रासौ गायो सो सब देखते ही रह गये—अजी ये कहा रासौ है—मैं तो कल्ल एक रासे में फंस गयौ यासूं तुमारे बहां नांय आय सक्यो—अजी रामगोपाल बड़ौ दिवारिया है, वाके रासे में फंस कै रुपैया मत बिगाड़ दीजो—हमनै आज बिनको रासौ निपटाय दीनौ है। देखौ साब! रासे के संग रासौ है, बुरी मत मानो।

डाक्टर जो. ए. ग्रियर्सन महोदय लिखते हैं—

"The word about which you ask may be spelt either Rásá or Rásau, the former

is the ordinary Hindí form, the latter comes from Braj. Probably रासो would be the correct Márwári form. The word means 'Chronicle.' Thus Rás-málá means 'the Garland of Chronicles.' It is probably derived from the Sanskrit रासक or रास, but there are some doubts as the word means a kind of theatrical performance (See the Sahitya Darpana) and not a historical work. Moreover, in old Márwári, the word is sometimes spelt रायसो, the origin of which (if it is not a mistake) is obscure. It is just possible that it is derived from राजादेश, just as आयसु is derived from आदेश।"

उदयपुर के पण्डित गैारीशंकर हरीचन्द ग्रोझाजी, जो मेवाड़ ऐतिहासिक बिभाग के अध्यक्ष हैं, लिखते हैं—मैं 'रासा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'रास' शब्द से होना मानता हूं। 'रास' शब्द का अर्थ 'विलास' भी होता है (शब्दकल्पद्रुम, चतुर्थ काण्ड, पृ० १५९) ग्रैार 'विलास' शब्द चरित, इतिहास आदि के अर्थ में प्रचलित है। जयबिलास भीमविलास आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ग्रैार प्राचीन गुजराती भाषा में कई राजाओं के इतिवृत्ति 'रास' नामसे प्रसिद्ध हैं (कुमारपालरास, श्रीपालरास आदि) कर्नल टाड के पीछे फार्ब्स साहिब ने भी 'रासमाला' नामक गुजरात का इतिहास लिखा है, जिसमें भी 'रास' शब्द चरित, इतिहास, वृत्तान्त आदि का सूचक है। कोई कोई बिद्वान 'रासा' शब्द की उत्पति 'रहस्य' से होना अनुमान करते हैं; परन्तु 'रहस्य' का 'रासा' रूप किसी प्राकृत ग्रन्थ या लेख में मेरे देखने में नहीं आया। 'रहस्य' का प्राकृतरुप 'रहस्स' तो जहां तहां मिलता है। बि० स० १०२९ के बने हुए 'पाइयलच्छो' नामक प्राकृतकोश में 'रहस्य' का प्राकृतरुप 'रहस्स' (गुह्य के अर्थ में) ग्रैार 'रास' का 'रासा' (नृत्य के अर्थ में) दिया है। संमद्धो संघट्टी रासा हल्लीस ग्रोखमं उच्चियं। गुज्झं रहस्स मासा मणोरहो कोसयं वसयं ॥ २७१ ॥ गटिङ्गन् का छपा हुआ, पृष्ठ ५०॥ ऐसे ही 'गडउवहो' नामक प्राकृत ऐतिहासिक काव्य में तंखु सिरीए रहस्सं ग्रैार णिच्चधणदार रहस्स रक्खणों। रंभामजरी नाटिका में कई सराणं करकवरहस्सं ण कोवि बुज्झेदिं; ग्रैार महावंसो, अभिधानदीपिका आदि अनेक पाली ग्रन्थों में भी रहस्य का प्राकृतरुप 'रहस्स' लिखा देखा है। परन्तु रहस्य के स्थान में 'रासो' मेरे देखने में नहीं आया। ऐसे ही 'रासक' शब्द से 'रासा' की उत्पत्ति मानने वालों से भी मैं सहमत नहीं हूं, क्योंकि रासक एक प्रकार के नाटक—दृश्यकाव्य—का नाम है। परन्तु चरित्र या साधारण काव्य के अर्थ में उसका प्रयोग होना पाया नहीं जाता। 'रासैा' शब्द मेरी समझ में अशुद्ध है, हिन्दी में उसका शुद्धरूप 'रासा' लिखना चाहिए। प्राकृत ग्रैार राजपुताने की भाषा में 'रासो' बोला जाता है, परन्तु 'रासैा' का प्रयोग तो वहां भी अज्ञात है। प्राकृत में पुलिङ्ग शब्दों के लिये प्रथमा के एकवचन का प्रत्यय 'ग्रो' है। अदन्तात् पुंसि प्रथमैकवचनस्य सोः स्थाने ग्रो स्यात्—(हृषीकेश का प्राकृतव्याकरण)। ग्रत ग्रोत्सोः॥५।१॥ अकारान्ताच्छकारपरस्य सोः स्थाने ग्रोत्वं भवति॥ वच्छो। वसहो पुरिसो। वृथाः। वृषभः। पुरुषः। (वररुचि का प्राकृतप्रकाश) ग्रैार इस नियम के अनुसार प्राकृत में अकारान्त पुलिङ्ग के नाम ग्रोकारान्त होते हैं (अग्गिलो, गन्धवहो, मारुग्रो, समीरो, पहंजणो, पवणो। विणयसुग्रो, खयरांग्रो, तक्खो, पन्नथरिऊ, गरुलो॥ राया सिमुक सातवाहनो सिरिमतो। रायो च सिरि सात कनिनो। कुमारो सातवाहनो (नायाधार की गुफा के लेखों में, आर्कियालाजिकल सर्वे ग्राफ वेस्टर्न इण्डिया, इन्दैार केव टेम्पल्स, पृष्ठ ६४) प्राकृत से निकली हुई गुजराती ग्रैार राजस्थानी भाषाओं में अकारान्त ग्रैार आकारान्त शब्द बहुधा ग्रोकारान्त

बोले और लिखे जाते हैं (घोड़ो आयो, लड़के आयो, काके अजमेर गयो, रामो घरे गयो, आदि राजस्थानी भाषा में और घोड़ो लाव्यौ, छोकरो आव्यो, आदि गुजराती भाषा में)। इस लिये राजपूताने की भाषा में और प्राकृत में 'रासो' लिखा जाता है। परन्तु उक्त भाषाओं के ओकारान्त शब्दों के हिन्दी में वैसे के वैसे बिना किसी विशेष कारण के नहीं लिख सकते। अतएव हिन्दी में रासा ही लिखना मेरी राय में ठीक जचता है। परन्तु "रासौ" ते सर्वथा अशुद्ध है। "रासा" शब्द का कई अर्थ में प्रयोग किया जाता है, परन्तु पुस्तकों के नामान्त में जो 'रासा' शब्द आता है (पृथ्वीराजरासा, रायमलरासा, हम्मीररासा आदि) वहां ते उसका अर्थ चरित, इतिहास आदि ही मानना पड़ता है"।

इस विषय पर जोधपुर के मुन्शी देवीप्रसाद जी लिखते हैं—रासे के मायने कथा के हैं। यह रुढ़ी शब्द है। एक वचन रासो और बहुवचन रासा है। मेवाड़ ढूंढाड़ और मारवाड़ में झगड़े के भी रासा कहते हैं जैसे यदि कई आदमी झगड़ रहे हों या वाद विवाद कर रहे हों, तो तीसरा आदमी आ कर पूछेगा 'कांई रासो है'। लंबी चौड़ी वार्ता को भी रासो और रामायण कहते हैं। बकवाद को भी रामायण और रासा ढूंढाड़ में बोलते हैं। "कांई रामायण है" क्या बकवाद है। यह एक महावरा है। ऐसे ही रासा भी इस विषय में बोला जाता है जैसे 'कांई रासो है'।

उदयपुर से पण्डित रामनारायण दूगड़ जी लिखते हैं—रासा या रासो शब्द रहस या रहस्य का प्राकृत रुप मालूम देता है, जिसका अर्थ गुप्तबात या भेद का है। जैसे कि शिवरहस्य, देवीरहस्य आदि ग्रन्थों के नाम हैं, वैसे ही शुद्धनाम पृथ्वीराज रहस्य का प्राकृत में पृथ्वीराज रास, रासा या रासो हो गया। रहस्य के अतिरिक्त रास शब्द से भी रासा या रासो रुप होना सम्भव है, परन्तु ग्रन्थ-चरित्र या कथा के अर्थ से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं पाया जाता। अतः रहस्य ही का रासा शब्द बना हो ऐसा मेरा ख्याल है। "रासो" यह रूप इस शब्द का कैसे हुआ सो कुछ ध्यान में नहीं आता, क्योंकि प्राकृत में औकारान्त शब्द देखे नहीं गए।

ऊपर जो जो सम्मतियां उद्धृत की गई हैं उनसे स्पष्ट है कि यह शब्द 'रासौ' नहीं है। इसका शुद्धरुप 'रासो' है, जिसका अबतक राजपुताने में प्रचार है। कुछ लोगों की यह सम्मति है कि हिन्दी में इसका रुप 'रासा' होना चाहिए। पर इसका कोई युक्तिसंगत कारण नहीं देख पड़ता, जिससे रासो शब्द का शुद्ध बदल कर एक नया रूप बना दिया जाय। मेरी सम्मति है कि यह शब्द 'रासो' है और इसको इसी प्रकार से लिखना उचित है। मुंशी देवीप्रसाद जी, इसका प्रयोग 'रासो' एक वचन में और 'रासा' बहुवचन में बताते हैं, यह स्पष्ट समझ में नहीं आता और न वे कोई उदाहरण दिखा कर इस भेद के स्पष्ट करते हैं। 'रासो' का अर्थ कुछ लोग झगड़ा लड़ाई बताते हैं, जैसे पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, खुमान रासो, इत्यादि। परन्तु अब तक ऐसे भी ग्रन्थ वर्तमान हैं जिनमें सन्त साधु महात्माओं के जीवनचरित दिए हैं और उनमें भी रासो शब्द प्रयुक्त है। जैसे शील रासो, अढ़ाई के रासो, इत्यादि। अतएव 'रासो' शब्द के अर्थ चरित या वृत्तान्त के हैं और यह 'रास' शब्द से निकला है।

—

साहित्य समाचार



प्राचीन कविता।

National Library,
Calcutta-27.

साहित्य समाचार



प्राचीन कविता का अर्वाचीन अवतार ।

[पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा कल्पित]



लाला हंसराज, बी० ए०

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३] अप्रैल १९०२ ई० [संख्या ४

विविध वार्ता

हमारे पाठकों में से जो अंग्रेज़ी समाचारपत्र निरन्तर पढ़ते होंगे, उन्होंने युनिवर्सिटी कमिशन का वृत्तान्त और कार्यविवरण पढ़ा होगा। उन्हें इस बात का ज्ञान हुआ होगा कि भारतवर्ष की शिक्षाप्रणाली में कितना भारी परिवर्तन होने वाला है और इसी विषय के निर्णय पर भारतवर्ष की भविष्यत् उन्नति स्थिर है। परन्तु हमें दुःख है कि हिन्दी समाचारपत्रों ने इस विषय पर अपनी दृष्टि न दी और जैसा उचित था वैसा आन्दोलन नहीं मचाया। अस्तु हमें विश्वास है कि यदि वे अभी मौन साधन किए बैठे हैं तो जिस समय इस विषय का बिल कौंसिल में उपस्थित किया जायगा उस समय वे पूर्ण कटिबद्ध होकर इस बात का ध्यान रक्खेंगे कि कोई अनुचित बात न होने पावे। किसी देश की उन्नति वा अवनति उसके शिक्षित लोगों पर निर्भर रहती है। क्योंकि वेही लोग सब बातों को समझ कर अपने देशवासियों को सम्मति देते और उन्हें कार्य करने के लिये उद्यत करते हैं। यदि शिक्षा में ऐसा कुछ परिवर्तन हुआ कि जिससे उच्चशिक्षा के प्रचार में बाधा पड़े तो बस, यहीं से देश की उन्नति का इति है। इससे हम अपने सहयोगियों से प्रार्थना करते हैं कि वे इस विषय पर अपना पूरा ध्यान रक्खें और उपयुक्त अवसर को अपने हाथ से न जाने दें।

***

युनिवर्सिटी कमिशन में किन किन बातों पर विचार किया जायगा इस विषय की सूचना के लिये हम अन्यत्र उस सम्मति का अनुवाद पाठकों के अर्पण करते हैं जो काशी नागरीप्रचारिणी सभा के प्रतिनिधि तथा उपसभापति बाबू गोविन्ददास ने काशी में २ अप्रैल को कमिशन के सम्मुख सभा की ओर से उपस्थित की थी। हम सभा को धन्यवाद और बधाई देते हैं कि उसने उपयुक्त अवसर पर अपने कर्तव्य का पालन

किया और अपनी स्थिति को सफल किया। हम सभा की सम्मति से पूर्णतया सहमत हैं और हमें आनन्द है कि वह निष्पक्षभाव से अपनी उचित सम्मति को कमिशन के सम्मुख उपस्थित कर यश और धन्यवाद की पात्र बनी। हिन्दी के पाठकों को इस पर विचार करना चाहिए और जहां तक हो सके ऐसे कार्यों में सभा की सहायता करनी चाहिए।

***

हम गत कई संख्याओं में पृथ्वीराज रासो के विषय में लिख चुके हैं। आज हमें इस बात के प्रकाशित करते बड़ा आनन्द होता है कि अब इसके छपने का पूरा और उपयुक्त प्रवन्ध होगया है। हिन्दी के पाठकों को स्मरण होगा कि सन् १८८७ ई० में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या जी ने इस ग्रन्थ का छपवाना आरम्भ किया था। परन्तु एक ही पर्व छपकर सहायता के अभाव से वह कार्य रुक गया था। अब पड्या जी ने प्रथम पर्व की कुछ प्रतियां काशी नागरीप्रचारिणी सभा को अर्पित की हैं और भविष्यत् में कतिपय सभासदों की सहायता से सम्पूर्ण ग्रन्थ के सम्पादित कर देने का भार अपने ऊपर लिया है। हमें इस बात से विशेष आनन्द हुआ कि सभा द्वारा इस ग्रन्थ का दूसरा पर्व भी शीघ्रही प्रकाशित किया जायगा और भविष्यत् में इसके सम्पादन और प्रकाशन का कार्य बराबर चला जायगा। यह ग्रन्थ हिन्दी का गौरव है और इसका अब तक अप्रकाशित पड़ा रहना हिन्दीहितैषियों के लिये बड़ी लज्जा की बात थी; परन्तु आशा है कि हमलोगों को लज्जित होने का अब समय न रहेगा। उक्त पंड्या जी की उदारता के लिये हम नितान्त अनुगृहीत हैं और साथही हम सभा की भी हृदय से प्रशंसा करते हैं कि उसने बड़े दत्तचित्त होकर इस कार्य का भार अपने हाथ में लिया है। हिन्दी के प्रेमियों और पाठकों को उचित है कि यदि ग्रन्थ की रुचि से नहीं तो अपने पुस्तकालय की शोभा और उसके गौरव के लिये इस ग्रन्थ को अवश्य खरीदें और सभा तथा सम्पादकों को उत्साहित कर समस्त ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशित कर देने के लिये अनुरोध करें।

***

हिन्दी के प्रचार की बहुत से लोग धूम मचा रहे हैं और वास्तव में इसीके पूर्ण प्रचार पर देश की उन्नति का बहुत कुछ भाग निर्भर है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब देश भर की भाषा एक हो और यह बात सर्ववादिसम्मत है कि यदि वह भाषा कोई हो सकती है तो वह हिन्दी ही है। परन्तु देशभाषा एक करने के पहिले अक्षरों का एक हो जाना बहुत आवश्यक है। भारतवर्ष में इस समय जितने अक्षर प्रचलित हैं उन सभों में देवनागरी अक्षरों से बढ़ कर सर्वाङ्ग पूर्ण और सुन्दर दूसरे नहीं है, अतएव देशहितैषीमात्र का यह उद्योग होना चाहिए कि यदि भारतवर्ष की सब भाषाएं नहीं तो कम से कम प्रधान प्रधान आर्य भाषाएं तो नागरी अक्षरों में लिखी और पढ़ी जाने लग जांय। इन प्रधान आर्यभाषाओं में हम हिन्दी, मराठी, गुजराती, बङ्गला, उर्दू और कनाड़ी भाषाओं की गिनती करेंगे। हिन्दी नागरी अक्षरों में लिखी और पढ़ी जाती है; मराठी, और कनाड़ी देवनागरी अक्षरों में पढ़ी जाती है। गुजराती के अक्षर नागरी से कुछ भिन्न हैं और बंगला के अधिक भिन्न; तथा उर्दू के विषय में तो यह विचित्रता है कि वह आर्यभाषा होकर भी शेमिटिक अक्षरों में लिखी जाती है। यद्यपि यह कार्य कठिन है, परन्तु उद्योग होने से सम्भव है कि काल पाकर इस उद्योग में कुछ सफलता प्राप्त हो सकै। सबसे सुगम उपाय इस कार्य के करने का जैसा कि एक महाशय ने काशी की नागरीप्रचारिणी सभा को लिखा है यह है, कि एक मासिकपत्र ऐसा निकाला जाय जिसमें भारतवर्ष की भिन्न भिन्न आर्यभाषाओं के लेख नागरी अक्षरों में

छापे जांय। इससे आशा है कि इस विषय का विचार पढ़े लिखे लोगों में धीरे धीरे फैलता जायगा और सम्भव है कि समय पाकर प्रान्तीय भाषाओं के लेखक इसकी आवश्यकता के। मानने लग जांय। किसी जाति के जीवन में ५० वा १०० वर्ष कोई चीज नहीं है। इससे यदि १०—५ वर्ष में इस उद्योग के करने पर कोई विशेष फल न देख पड़े, तोभी इससे हताश होने की आवश्यकता नहीं है। सहयोगियों से प्रार्थना है कि इस प्रस्ताव पर वे अपनी सम्मति दें अपने अपने पत्र में इसका आन्दोलन प्रारम्भ करें।

* * *

गत वर्ष हम हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की प्रथम वार्षिक रिपोट के विषय में लिख चुके हैं। यद्यपि अभी तक गवर्मेण्ट ने उसे नहीं छपवाया है, पर दूसरे वर्ष (१९०१) की रिपोर्ट भी काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने गवर्मैण्ट के पास भेज दी है। इस वर्ष में सब मिला कर २५० से अधिक पुस्तकों का पता लगा, जिनमें से १४६ की नोटिस रिपोट में सम्मिलित की गई है। शेष इसलिये छोड़ दी गईं कि वे मारवाड़ी भाषा में लिखी गईं थीं, अथवा वे कोई ऐतिहासिक उपयोगी या उत्तम न थीं। इन १४८ ग्रन्थों में से १४१ ग्रन्थ ७३ ग्रन्थकारों के लिखे हुए हैं। इनमें से १ बारहवीं, १ चैादहवीं, १२ सोलहवीं, १२ सत्रहवीं, १९ अट्ठारहवीं और १५ उन्नीसवीं शताब्दी में वर्तमान थे। शेष १३ ग्रन्थकारों के समय का निर्णय नहीं हो सका। इन ग्रन्थों में से अधिकांश १९वीं शताब्दी के लिखे हुए हैं। इस रिपोर्ट में जिन जिन ग्रन्थों का वर्णन है उनमें से एक तो तुलसीदास जी की रामायण है कि जिसके विषय में हम सरस्वती, भाग २ के पृष्ठ १४६-४७ में लिख चुके हैं। इस वर्ष की खोज में सुन्दरी कुंअरी के कई ग्रन्थों का पता लगा है। ये सुन्दरी कुंअरी कृष्णगढ़ के महाराज राजसिंह की कन्या और प्रसिद्ध सावन्तसिंह उपनाम नागरीदास जी की बहिन थीं। इनके सब ग्रन्थ भक्तिविषय पर हैं और इनका जीवन समय अट्ठारहवीं शताब्दी का अन्तिम अर्द्ध भाग था। बिहारी सतसई की एक हस्तलिखित प्रति सन् १७१८ की लिखी हुई मिली है। इसीसे इसकी प्राचीनता का अनुमान हो सकता है। इससे प्राचीनतर प्रति और कोई अभीतक तो नहीं मिली। हमें यह देख कर सन्तोष हो रहा है कि इस अनुसन्धान से हिन्दी का विशेष लाभ होगा। सभा तथा प्रान्तिक गवर्मैण्ट दोनों इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

मोती

सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की महिमा अपरम्पार है। अहा! इस सृष्टि में उसने ऐसे ऐसे अद्भुत पदार्थ रचे हैं कि जिन्हें देख कर मनुष्य चकित हो जाते हैं। इस संसार में असंख्य ऐसी वस्तुएं हैं कि जिन्हें ये अल्पबुद्धि के मनुष्य नहीं जानते और न कदापि जान सकेंगे। केवल इसी भूमि पर अनगिनत पदार्थ वर्तमान हैं कि जिन्हें हम लोग नहीं जानते। यह कोई अचम्भे की बात नहीं है, क्योंकि सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने अपनी अनन्त शक्ति से जो असंख्य पदार्थों की रचना की है, भला उन्हें क्षुद्रबुद्धि और अल्प आयु के मनुष्य कैसे जान वा समझ सकते हैं। यदि एक ही विषय लिया जाय तौ भी पाठकगण देखेंगे कि उसका अन्त नहीं मिलता और न उनकी आयु इतनी है कि उसे पूर्ण रूप से वे जान सकें। जब एक ही विषय की यह अवस्था है—चाहे वह कोई विषय क्यों न हो—तो समस्त संसार की वस्तुओं का ज्ञान अवश्य असम्भव है। इसी कारण से हमारे त्रिकालज्ञ पूज्यवर ऋषियों और मुनियों ने इस खोज के। अनन्त और अशान्तिकारक जान कर हेय ठहराया है और जिससे शान्तिलाभ हो उसे पुरुषार्थ माना है, तथा शान्तिपूर्वक मनुष्यजीवन निर्वाह के अर्थ जिन बातों की आवश्यकता है उसी-

को माना है। हम अपने उन भाइयों को, जो नई अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त करके यह समझते हैं कि हमारे पूर्वज लोग बहुत से सिद्धान्तों को जो कि इस काल में जाने गए हैं, नहीं जानते थे, विश्वास दिलाते हैं कि ऐसा नहीं है। वे लोग अवश्य इससे भी अधिक जानते थे। आज कल के नई शिक्षावालों का यह विश्वास केवल अपनी पुरातन विद्या के न जानने और न प्राप्त होने ही से है। यहां हमको इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है कि इस बिचारे हिन्दुस्थान पर कितनी कितनी आपत्तियां आईं और यहां की कितनी विद्याएं लोप हो गईं, अर्थात् उस आपत्काल में उन सबकी रक्षा न हो सकी और शत्रुओं ने जान कर वा अनजाने उन सबको नष्ट कर दिया, जिनका परिचय अबलों कहीं कहीं मिलता है, और आधुनिक कल्पनाओं की छाया अब भी देखने में आजाती हैं। हां, उनके कार्यों का रूपान्तर हो गया हो, इससे उनकी अज्ञानता सिद्ध नहीं हो सकती और यह रूपान्तर तो सदा ही होता रहेगा; पर जिन कल्पनाओं और सिद्धान्तों पर वे निर्भर हैं उनमें दोष नहीं आ सकता। हमारे त्रिकालज्ञ मुनिगण इस युग की इस अवस्था का भी परिचय देगए हैं। उनको इस भविष्यद्वाणी को कौन नहीं जानता। यह हम लोगों की भूल है कि हम इसकी खोज अपने भण्डार में नहीं करते और उन्हें अज्ञानी ठहरा कर दोष के भागी बनते हैं। यह हमारा दोष है न कि हमारे पूर्वजों का। यह कहा जा सकता है कि हमारे शास्त्र में बहुत सी बातें असम्भव और मिथ्या कही गई हैं, किन्तु पाठकगण ऐसा न समझिए; याद रखिए कि समय के हेर फेर से भाषा का क्रम और उसको रीति बदला करती है, जिससे हमारी समझ में उनका तात्पर्य्य ठीक ठीक नहीं आता; पर उसकी जड़ में सत्यता अवश्य है।

इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है और सिद्ध कर दिया जा सकता है कि यदि हम लोग उन बातों पर ध्यान दें और सोचें तो उसकी सत्यता माननी होगी। हमको इस समय दूसरे विषय पर लिखना है, इस लिये इस विषय को फिर पाठकों के सम्मुख उपस्थित करेंगे। आज हम पाठकों के सूचनार्थ मोती के विषय पर लिखेंगे।

मोती "रत्नों" में गिना गया है। इस रत्न से लोग सुन्दर आभूषण बनवाते हैं। जगत में इसका बड़ा व्यापार होता है। इस जगत में बहुत कम लोग मिलेंगे जिन्होंने मोती न देखा हो।

इसका व्यापार अति प्रचीन काल से होता चला आया है और यह किस किस काम में आता है यह भी लोग जानते हैं। पर मोती कहां से और कैसे प्राप्त होता है यह बात बहुत लोग नहीं जानते हैं।

मोती एक प्रकार के 'सीप' से प्राप्त होता है जिसको भाषा में 'सीप', 'मोती का सोप', वा 'अस्तुरा' और अङ्गरेज़ी में मोलस्कस (Molluscus) कहते हैं। यह जन्तु समुद्र में और कहीं कहीं तालाबों में भी होता है। इस जन्तु के भीतर मोती की उत्पत्ति होती है। समुद्र में जो सीप होते हैं उन्हीं के मोती उत्तम होते हैं, पर वे सभी स्थानों पर नहीं मिलते। ये जन्तु मुख्य मुख्य स्थानों में पाए जाते हैं, मानो दो सीपों से मढ़े होते हैं जो एक ओर से खुलता और बन्द होता है। मोती की बनावट उन्हीं पदार्थों से है कि जिनसे सीप के भीतर का चमकदार भाग बना रहता है। यह जन्तु कई जाति के होते हैं, इसीसे कई प्रकार के मोती देखने में आते हैं,—कोई श्वेत, कोई पीला, कोई काला, इत्यादि। चार वर्ष से कम के सीप में मोती नहीं मिलते, वा बहुत कम मिलते हैं और सात साल के सीप से बहुधा उत्तम मोती निकलते हैं। यदि इन सात साल के सीप से मोती न निकाला जाय, तो इस आयु के उपरान्त यह जन्तु मर जाता है और मोती नष्ट हो जाता है। इस लिये चार साल के सीप से सात साल के सोप में ही मोती मिलता है। कभी कभी ये जन्तु उन स्थानों को छोड़ कर बरसों तक कहीं चले जाते हैं, इस कारण प्रति वर्ष मोती नहीं निकाले जा सकते। इसका ठीक ठीक कारण

अभी तक वैज्ञानिकों को विदित नहीं हुआ है। सभी सीपों में मोती नहीं मिलता। किसी किसी में से अच्छे मोती प्राप्त होते हैं।

आबदार मोती

जौहरी लोग अति उत्तम मोती उसीको कहते हैं जिसका 'छिलका' (Skin) सम्पूर्ण रूप से निर्दोष हो और उसमें अच्छी उज्वलता और आभा (Orient) हो जिसे साधारण बोल चाल में 'आबोताब' कहते हैं; अर्थात् मोती को रङ्गत स्वच्छ, श्वेत और चमकदार होनी चाहिए, जिसमें किसी प्रकार का 'छीटा' वा 'दाग' न हो। मोती गोल अच्छा गिना जाता है। यदि गोल न हो तो सुडौल पछाहीं नाशपाती की भांति हो जिसे 'सुराहीदार' कहते हैं। इन दोनों डौल के मोतियों का आदर होता है। ऐसे सुडौल मोती के बड़े दाम होते हैं। ऐसे मोती राजों और धनाढ्यों ही के पास देखने में आते हैं।

मोती की परख

हमारे हिन्दुस्तान में अच्छे मोती वेही गिने जाते हैं जिनमें कोई दोष न हो और वह सुन्दर गोल चमक चिकनाई वाला हो। किसीने कहा है—

निर्मल, गोलु, जला, गरु होई,
चिक्कन चारु चिलुकहि सोई।
कोमलता प्रतिबिम्ब दिखावे,
सो मुक्ता बहुमोलहि पावे॥

मोती में सात ऐब होते हैं जिनसे मोती का दाम घट जाता है। हिन्दुस्तान के जौहरी लोग मोती में सात त्रुटि दोष, दस अनिष्ट दोष और आठ गुण बताते हैं, जिनका वर्णन नीचे किया जाता है। जो इन दोषों से शुद्ध हो वह अमूल्य गिना जाता है।

मोती में जो ७ त्रुटि दोष ऊपर कहे गए हैं वे ये हैं—

(१) गर्ज = जो फूटा वा टूटा सा देख पड़े जिसे तड़का हुआ भी कहते हैं। (२) लहर = जिसमें अति सूक्ष्म रेखाएं हों। (३) गिडनी = जिसके बीच गिरदे में रेखा हो। (४) चोभा = जिसके भीतर मसूरी का सा दाग हो। (५) कागाबासी = श्याम रंग का मोती वा जो आधा काला और आधा श्वेत हो। (६) ताम्रेश्वर = ताम्र वर्ण की छाया जिसमें हो। (७) चिहा = जो ऊंचा नीचा हो, अर्थात् जिसका पृष्ठ खरबुदरा हो, चिकना न हो।

अब दस अनिष्ट दोष लिखे जाते हैं जिनका बड़ा विश्वास हम हिन्दुस्तानियों में होता है। इन दश पातक दोषों में प्रथम चार महाअनिष्ट दोष हैं, जिनका कुफल भी उनके साथ लिख दिया जाता है, और शेष छ दोष मध्यम गिने जाते हैं।

१० अनिष्ट दोष

(१) शुक्ति परस = सीप का टुकड़ा जिस मोती में लगा रहे। यह दुःखकारक है। (२) मीनाक्ष वा मत्स्यनेत्र = मछली की आंख सा। यह संततिहर होता है। (३) अतिरक्त = मूङ्गे की सी लाल आभा वाला। मृत्युकारक है। (४) जठर = बिना चमक-वाला, ठर्रा दाना। दारिद्र्य और रोगकारक। (५) त्रिवृत्त = जिसके चौगिर्द तीन रेखा हों। सुख सौभाग्य को हरे और भयदायक है। (६) चिपट = जो चिपटा हो अर्थात् गोल न हो। बदनामी का कारक है; अपवाद बढ़ावे। (७) त्रिसिर वा त्रिश्रृक = तीन कोने जिसमें हों। सम्पत्तिहर है। (८) कृश = लम्बा मोती। बुद्धिहीन करे। (९) कृशपार्श्व = टूटा मोती। मनवाञ्छित फल को दूर करे और उद्यमहीन बनावे। (१०) अशोभन = मैला वा दागवाला। रोगकारक होता है।

हम लोग इन दोषों का बड़ा विचार रखते हैं और जहां तक होता है ऐसे दूषित मोतियों को मोल नहीं लेते। जो लोग नहीं जानते, वा इसका विचार नहीं करते, उनकी बात जुदी है; पर जितने अच्छे हिन्दुस्तानी जौहरी हैं, वे सब इन पातकों को अशुभ मानते हैं।

अब उत्तम मोती के आठों गुण भी सुन लीजिए—

८ गुण

(१) सुतारत्व=जिस मोती में सितारेवत् चमक हो। (२) स्वच्छत्व=जो दोषरहित हो, अर्थात् जिसमें न कोई त्रुटि हो और न कोई उक्त दोष। (३) सुवृता=सुन्दर गोल मोती। (४) निर्मलत्व=जो मलरहित हो, अर्थात् जो साफ हो और जिसमें मैल वा किसी प्रकार का छीटा न हो। (५) घनत्व=जो भारी हो। (६) स्निग्धत्व =गम्भीर चमकवाला और चिकना हो। (७) सुछाया = जिसकी छाया मनोहर हो। (८) स्फुटित्व=जो साफ और सुन्दर हो, जिसके देखने से चित्त प्रसन्न हो।

रत्नों की पहिचान अभ्यास पर निर्भर है, यह साधारण बात नहीं है। कुछ काल अभ्यास करने पर इसकी 'परख' होती है, क्योंकि बहुधा रत्नों में ऐसे सूक्ष्म दोष रहते हैं कि साधारण मनुष्य उन्हें नहीं देख सकता। जिनको इसकी परख है वेही लोग चट उन्हें देख लेते हैं। तौभी ऊपर लिखी बातों का ध्यान रखने से पाठकगण बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

सब से बड़े मोती

इस काल में सब से बढ़कर उत्तम और निर्दोष मोती, जिसका जोड़ा नहीं है, मास्को (Moscow) के अजायबख़ाने में वर्तमान है। इसे ला पलेग्रिना (La Pallegrina) कहते हैं। यह हमारे हिन्दुस्तान ही का मोती है, जो बड़ा ही सुन्दर, आबदार, सुडैाल और पूर्णरूप से गोल है। इस जगतविख्यात मोती की तौल २८ किरात अर्थात ६० रत्ती से कम नहीं है।

एक दूसरा मोती जो बड़ा वज़नी है, साउथ केन्सिङ्गटन (South Kensington) के अजायबख़ाने में है। यह मोती बेडैाल है, गोल नहीं है, पर इसकी तौल (3 oz.) लगभग डेढ़ छटांक के है, और इसका बड़ा वृत्त (गिर्दा) ४३ इञ्च का है।

मोती निकलने के स्थान

अब बहुत हैं। प्राचीन काल में हिन्दुस्तान और पारस की खाड़ी से मोती निकाले जाते थे, पर अब कई देशों में पाए जाते हैं।

आस्ट्रेलिया, मध्य अमेरिका, सूलो समुद्र और पासिफिक महासागर के दक्षिण भाग के टापू इत्यादि इसके मुख्य स्थान हैं।

हिन्दुस्तान में भी कई स्थानों से मोती निकाले जाते हैं—जैसे सीलोन, मदरास, करांची, इत्यादि स्थानों में समुद्र से और मुरशीदाबाद, जहांगीरनगर, सिलहट इत्यादि स्तानों में तालाबों और झीलों से; और ताम्रपरणी नदी में भी मोती के सीप होते हैं। यह मोती के सीप गोता लगाकर जल की तह से निकाले जाते हैं। गोता लगाने को दो रीति हैं। एक तो पुरातन रीति से केवल डुबकी मार कर, जो अब लों हिन्दुस्तान आदि में प्रचलित है। दूसरी आधुनिक रीति से अर्थात् 'गोताखोर-की-पोशाक' पहिन कर, जिसका व्यवहार आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि में है। इसका पूरा विवरण आगे किया जायगा।

ऊपर लिखा जा चुका है कि हिन्दुस्तान में कई स्थानों से मोती प्राप्त होते हैं। कराची बन्दर के पास और मदरास के तिन्नावली (Tinnavally) स्थान में इसके छोटे कारख़ाने हैं, पर सबसे बड़ा कारखाना, जहां से अधिक और उत्तम मोती निकलते हैं, सरन्दीप (Ceylone) में है। सरन्दीप की मनार खाड़ी के किनारे अरिप्पू (Arippu) मुख्य स्थान इसका है। मनार खाड़ी के पश्चिम किनारे से कुछ दक्षिण की ओर ६ मील से ८ मील के परे सीप समुद्र के अन्दर तलभाग में पाए जाते हैं।

मोती निकालने का काम सरकार ने अपने हाथ में रक्खा है। बिना सरकारी आज्ञा के कोई व्यक्ति सीप नहीं निकाल सकता। इस काम पर कई 'इन्स्पेक्टर' नियत हैं जो इसकी देख भाल किया

करते हैं। ये लोग जब देखते हैं कि समय अनुकूल आ गया और सीप की भी अवस्था अच्छी है, तब सरकार में इसकी रिपोर्ट करते हैं। वहां की आज्ञा आने पर तदनुसार काम प्रारम्भ होता है। यदि उक्त इन्स्पेक्टरों की अनुमति में अधिक लाभ की सम्भावना है वा कोई विशेष कारण है, तो सरकार स्वयं अपनी ओर से मोती निकलवाती है। उस समय जो डोंगे किराए किए जाते हैं उसका किराया ५०० से ८०० पेगोडा तक बढ़ जाता है। साधारणतः तो सरकार इसका ठीका नीलाम कर देती है। जिसकी बोली अधिक होती है उसको उस साल का ठीका मिल जाता है। यह ठीका वहीं का कोई साहूकार ले लेता है। मोती निकालने का समय प्रायः मार्च महीने के दूसरे सप्ताह से प्रारम्भ होता है। मोती के सीप निकालने में अधिक व्यय के अतिरिक्त कठिनाइयां भी बहुत हैं। सीप निकालने और मोती प्राप्त करने की

विधि

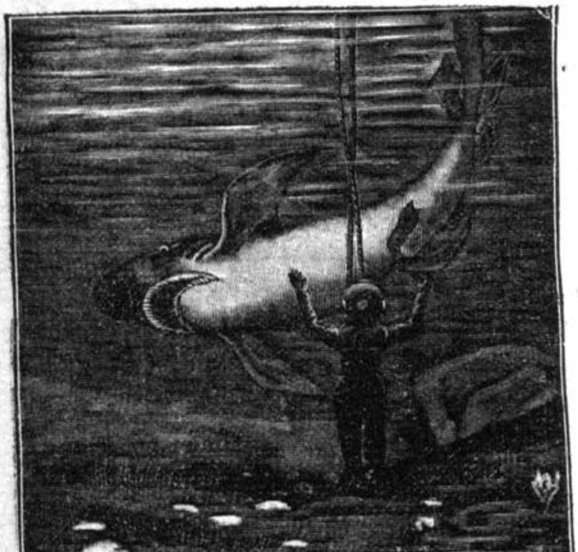
इन लोगों की वही है जो प्राचीन समय में थी। चालीस वा पचास डोंगे इस काम के अर्थ जाते हैं और प्रति डोंगों पर दस दस गोतेखोर जाते हैं। आधी रात को ये डोंगे किनारे से रवाना हो जाते हैं और प्रातःकाल तक वहां पहुंच जाते हैं जहां सीप रहते हैं। वहाँ पहुंचने पर एक तोप का शब्द किया जाता है जो काम के प्रारम्भ कर देने का सङ्केत है। दो दो आदमी मिल कर काम करते हैं। एक गोता लगाता है और दूसरा डोंगे पर बैठा रस्सा अगोरता और उसकी सहायता करता है। गोतेखोर लोग प्रायः नङ्गे होकर गोता लगाते हैं; केवल एक फेटा कभी कभी रहता है जिसके सहारे टोकरी वा थैली, जिसमें सीप बटोरते हैं, रहती है।

तलभाग पर शीघ्र पहुंचजाने के अर्थ ये लोग एक बीस वा पचीस सेर का भारी पत्थर, जिसका एक सिरा रस्सी से बँधा रहता है, थाम कर डुबकी लगाते हैं। इस भारी पत्थर के सहारे वे चट पट तल पर पहुंच जाते हैं जो १० वा १५ फेदम (६० वा ९० फीट) गहिरा रहता है। वहां पहुंच कर सीप बटोर लाते हैं। इस बीच में डोंगे पर का मनुष्य सङ्केत पाने पर पत्थरवाला रस्सा ऊपर खींच लेता है, फिर टोकरी को और गोताखोर को बाहर खींच लेता है। इसी प्रकार एक वा दो मिनट बाहर दम लेकर गोताखोर फिर गोता लगाता है और सीप बटोर लाता है। ये सब सीप डोंगों पर इकट्ठे करके रक्खे जाते हैं। हर गोताखोर ४० वा ५० बार डुबकी लगाता है। प्रायः इनके कान नाक मुंह से पानी निकलता है। कभी कभी लोहू भी निकल आता है। तैाभी बेचारे साहस बश काम बराबर करते ही रहते हैं। जब गोताखोर थक जाता है तो वह डोंगे पर आजाता है और उसका साथी जो अब तक बाहर था, गोता लगाता है, और इसके स्थान पर पहिला गोताखोर ऊपरी काम करता है। यह लोग साधारणतः ५० से ८० सेकेण्ड तक जल के भीतर रह कर काम करते हैं। कोई कोई इससे भी अधिक काल तक जल में रह सकते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो ६ मिनट तक का दम साध सकते हैं और जल के अन्दर काम किया करते हैं, पर ऐसे गोतेखोर कम हैं। पाठकगण! यह कम समय नहीं है, बहुत है। अधिक गहराई में वायुमण्डल और जल के बोझ और दबाव के कारण १० मिनट से अधिक गोतेखोर की पोशाक में भी कोई नहीं रह सकता, जिसमें श्वास आदि लेने का भी सुभीता रहता है।

गोतेखोर की जान हर दम जोखिम में रहती है। समुद्र के विषैले जन्तुओं के अतिरिक्त बहुत से क्रूर हिंसक जन्तुओं से बड़ा डर रहता है, अतएव बहुत सावधान रहना पड़ता है।

सैंकड़ों प्रकार के भयङ्कर जलचर हैं, उनमें एक मकर (Shark) है जो बड़ी हिंसक और क्रूर मछली है माने सामुद्रिक सिंह ही है। इसका बड़ा भय रहता है।

पाठकों को विदित रहे कि इन गोताखोरों के साथ ब्राह्मण अवश्य रहते हैं जो मंत्रद्वारा उनकी रक्षा करते हैं और उक्त मछली को कील देते हैं, जिससे वह अधिक हानि नहीं पहुंचा सकती। इन गोतेखोरों का मंत्र में बहुत विश्वास है, इस कारण इनकी ओर से बहुत से ब्राह्मण इनकी रक्षा के निमित्त किनारे पर मंत्र द्वारा जप करते रहते हैं। इनका इसपर इतना विश्वास है कि जब तक उनकी ओर से मंत्र पढ़नेवाला ब्राह्मण न हो, वे कदापि गोता नहीं लगाते। इन ब्राह्मणों को हिस्सा मिलता है। इसके अतिरिक्त दूसरे जन्तुओं से बचने के लिये गोतेखोर छोटी छोटी बर्छियां भी रखते हैं।



मकर वा शार्क

नाक कान में पानी न जाय इस हेतु से यह लोग अङ्ग में तेल चुपड़ लेते हैं। इतने कष्ट उठाने पर और जान जोखिम पर भी ये लोग बराबर काम करते ही रहते हैं। ये लोग शीघ्र रोगी हो जाते हैं और इनकी आयु प्रायः कम होती है। हा! पेट के लिये क्या क्या कष्ट उठाने पड़ते हैं!

दोपहर तक बराबर इसी प्रकार काम होता रहता है। इस समय फिर तोप छोड़ी जाती है और काम बन्द हो जाता है। डोंगे वापस लौटते हैं और सांझ तक किनारे पर आ जाते हैं।

किनारे पहुंच कर संचित सीपों के चार चार ढेर करते हैं। उनमें से एक ढेर गोतेखोर का भाग है। दूसरे दिन एक एक हज़ार का ढेर नीलाम होता है, जिन्हें व्यापारी लोग मोल ले ले कर एक छप्पर में ले जाते हैं, जो इसी काम के निमित्त बनाया जाता है, और जिसकी भूमि पर साफ सुथरी करके चटाई बिछा देते हैं। इसी चटाई पर सीप रख कर सड़ाते हैं। भूमि पर सीप नहीं रखते। जब सीप के जन्तु मर जाते हैं तब उनमें से मोती निकालते हैं। जीते सीप से मोती निकालने में अति कठिनता पड़ती है और मोती के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने का डर रहता है, क्योंकि जब सीप अपना मुंह बन्द कर लेता है तो बड़ी कठिनाई से खुल सकता है। इस कारण जब सीप के जन्तु मर जाते हैं तब उन्हें उबालते हैं, क्योंकि कभी कभी सीप में मोती नहीं रहता, किन्तु जन्तु के अन्दर रहता है।

इसकी कोई पहचान नहीं है कि किस सीप में मोती है, और किसमें कैसा मोती है वा किसमें मोती नहीं है। अच्छे मोती का निकल आना भाग्य की बात है। किसीको उत्तम मोती मिल गए, किसीको छोटे ही मोती मिले, किसीको कुछ भी न मिला, केवल सीप ही हाथ लगे।

जब सीप उबाल कर सब मोती निकाल लेते हैं, तब छोटी छोटी पीतल की चलनी में उन्हें छानते हैं। यह चलनी कई प्रकार की होती है। किसीमें बहुत छोटे छिद्र होते हैं, दूसरे में उससे बड़े, तीसरे में इससे भी अधिक बड़े। इसी प्रकार की कई चलनियों में छानने से छोटे, मध्यम और बड़े मोती पृथक पृथक हो जाते हैं। इसीके अनुसार उनकी 'जाति' वा 'श्रेणी' होती है। बड़े दानों को 'फार दाने' कहते हैं और बहुत छोटे दानों को 'बूका' कहते हैं। ये मोती पहिले बिना छिद्र के होते हैं। इसमें छिद्र हीरे की कनी से करते हैं जिसे 'बेधना' कहते हैं। मोती जितना महीन बिधा होगा उतना ही

अच्छा है। यही मोती 'बिधे' और 'बिनबिधे' देश देशान्तर में बिकने जाते हैं।

बड़े मोतियों की माला, कण्ठे और कई प्रकार के सुन्दर आभूषण बनते हैं। और छोटे मोती गहने के वा ज़रदोज़ी के काम में लाए जाते हैं, वा औषधि में बरते जाते हैं, वा उनका चूना बना कर धनाढ्य लोग खाते हैं।

बम्बई का मोती

बम्बई में मोती नहीं निकलता। पारस की खाड़ी से जो मोती निकलते हैं वे यहां बम्बई में आकर बिकते हैं, उन्हेंको 'बम्बई का मोती' कहते हैं। यहां इसका बहुत व्यापार होता है। हिन्दुस्तान के ऊपरी भाग में अधिकतर यहीं से 'बोहरे' जाति के लोग मोती लाकर बेच जाते हैं और जाति के लोग भी इसका व्यापार करते हैं और वे 'जौहरी' कहलाते हैं।

मोती की रंगत

सबसे उत्तम मोती स्वच्छ, श्वेत, चमकदार होता है। स्वर्ण रङ्ग का पीला मोती भी अच्छा गिना जाता है। मोती कई जाति और रङ्ग के होते हैं। कोई श्वेत, कोई जरदी मायल, कोई लाली लिए, कोई श्याम, कोई बेचमक का ठर्रा दाना इत्यादि होता है। कहा जाता है कि बसरे का मोती सफेद सुन्दर पर चमकहीन होता है। सीलोन का जर्दीमायल जिसे 'मगज' का कहते हैं और साफ श्वेत चमकदार भी होता है। मसकत का मोती स्याही मायल, इसे 'म्यानी' का कहते हैं। जद्दे का मोती लम्बा चमकहीन और रुखा होता है। इसे 'चावलिया' कहते हैं। द्वारिका का श्याम होता है। कराची का अति 'बूका' अर्थात् बहुतही छोटा होता है। काहल का मोती सुन्दर गोल चमकदार और चिकना होता है। दरभंगिया मोती बेडौल छोटे, जर्दी और सुर्खी मायल और मैले होते हैं।

मोती की आय

हम ऊपर लिख चुके हैं कि हर साल मोती नहीं निकाले जाते, क्योंकि मोती के सीप (जन्तु) कई वर्ष के लिये स्थान छोड़ कर कहीं चले जाते हैं, वा उनकी अवस्था अच्छी लाभदायक नहीं रहती। पर अब यह देखना है कि जब निकाले जाते हैं तो कितने के मोती प्राप्त होते हैं। सरकारी रिपोर्टों से जो प्रगट होता है उसका ब्योरा यह है—

सन् ई०	पौंड	वर्त्तमान मूल्य
१८६३	५६०००	८४०००० रु०
१८७४	१००००	१५०००० रु०
१८७७	१९०००	२८५००० रु०
१८७९–८०	२९०००	४३५००० रु०
१८८१	५९८००	८९७००० रु०
१८८७	३९०००	५८५००० रु०

इनके बीच में मोती निकाले नहीं गए, अथवा बहुत कम निकले। सर डब्लू हारटन साहब (Sir W. Horton) ने, जब वे सरन्दीप के गवर्नर थे, विलायत जाने के पहिले जहां तक हो सका समस्त सीप निकलवा लिए थे। इससे सरकारी आय तो अपने समय में बहुत कुछ बढ़ा कर दिखा दी थी, पर भविष्यत् के लिये वे अच्छे सीपों का नाश कर गए। इसका फल बड़ा हानिकारक हुआ। सर बेकर साहब (Sir S. W. Baker) लिखते हैं कि उनको सन्देह है कि यहां सीप की अवस्था फिर कभी पनपेगी वा नहीं।

फ़ारस की खाड़ी

उक्त खाड़ी के मध्य से बराबर अरब देश के किनारे किनारे दूर तक मोती के सीप मिलते हैं जो कतार (Katar) नामक स्थान से हलूल (Halool) टापू के बराबर २०० मील तक के घेरे में है। वहां वाले सीप को 'सदफ' कहते हैं।

वहां भी प्रायः वही बिधि मोती निकालने की है जो ऊपर लिखी जा चुकी है। यह पारस के सुलतान के आधीन है। वहां भी बादशाह की ओर

से कार्यकर्ता नियत हैं, जिनके सामने सब सीप निकाल कर लाए जाते हैं, और उनपर २०) रुपए सैकड़े कर लगता है। वहां कितने का मोती निकलता है इसका ब्योरा ठीक ठीक नहीं ज्ञात हो सकता, क्योंकि यह काम दूसरे राज्य का है; परन्तु सन् १८६३ ईसवी में मिस्टर पेली (Mr. Pelly) ने जो रिपोर्ट हमारी सरकार में भेजी थी, उसमें उन्होंने अनुमान किया था कि १५०० डोंगे केवल 'बहोरे' जाति के सीप निकाला करते हैं, और उनके अनुमान से ४०००० पौण्ड का मोती वहां से निकलता है।

यहां का मोती आबदार, स्वच्छ होता है। यहीं के मोती को 'बसरे का मोती' कहते हैं। यहां के व्यापारी अधिक श्वेत मोती को बगदाद भेज देते हैं, जहां से वे सीरिया, पारस इत्यादि देशों में और कुछ बम्बई में लाकर बेच जाते हैं।

कहा जाता है कि हम हिन्दुस्तानी लोग पीत वर्ण के सुनहरे रङ्गवाले मोती पसन्द करते हैं, पर हमारी समझ में यह बात ठीक नहीं है। हमलोग भी स्वच्छ श्वेत मोती का आदर करते हैं। यहां आभूषणों का बहुत प्रचार है। सभी धनाढ्य अथवा साधारण लोग स्त्रियों के लिये आभूषण बनवाते हैं। इस कारण अधिकतर पीत वर्ण के सस्ते मोतियों की यहां खपत अधिक है। अतएव ऐसा अनुमान होना आश्चर्यजनक नहीं है।

विदित रहे कि समुद्र के भीतर असंख्य अमूल्य वस्तुएं हैं। धन्य है जगदीश्वर की महिमा! मूंगा भी नवरत्न में से एक रत्न है जो इसी समुद्र के तल में उत्पन्न होता है। यह एक प्रकार का सामुद्रिक जीव है जो देखने में अति सुन्दर होता है। इसका रंग भी मनोहर होता है। इसे भी गोता लगा कर निकालते हैं।

अब मोती वा सीप निकालने की दूसरी आधुनिक रीति का कुछ वर्णन करते हैं, जो आस्ट्रेलिया, अमेरिका इत्यादि में प्रचलित है। उक्त देश कहां हैं यह भूगोल का विषय है, जिसे पाठकगण भूगोल वा नकशों में देख कर जान सकते हैं। यहां भी सीप गोता लगा कर निकाला जाता है, पर ये लोग एक प्रकार की पोशाक पहिन कर जल के अन्दर जाते हैं। इस पोशाक को 'गोताखोरों-की-पोशाक' कहते हैं। इस पोशाक को एक प्रकार का यन्त्र ही समझना चाहिए। इस के पहिनने से गोताखोर बराबर श्वास लेता रहता है, अतएव देर तक जल के भीतर रह सकता है।

उक्त पोशाक ऐसे वस्त्र की बनाई जाती है कि जिसमें तनिक भी पानी नहीं जा सकता। ऐसे वस्त्र को अङ्गरेज़ी में वाटरप्रूफ (Water-proof) कहते हैं। यह पोशाक ऐसी होती है कि जिसमें कोट, पायजामा और जूता एक ही में बना रहता है। यह केवल गरदन और आस्तीन पर खुली रहती है; और जूते का तला सीसे का होता है जो तौल में लगभग १६ सेर का होता है। गोताखोर पहिले मोटे फलालैन की एक कमीज पहिन लेता है जो उसके पसीने को सोखती रहती है। फिर वह उस पोशाक को दूसरे मनुष्य की सहायता से पहिन लेता है, इस तरह से कि पहिले गिरेबान के रास्ते से अपने दोनों पैरों को डाल कर जूता और पायजामा पहिन लेता है और फिर दोनों आस्तीनों को उसमें हाथ डाल कर जो पहिले ही, से साबुन लगाकर चिकना कर लेता है, पहिनता है। ये आस्तीनें आधी दूर तक आगे की ओर मजबूत रबड़ की ऐसी तंग और चुस्त होती हैं कि कलाई पर खूब चिपक जाती हैं और उसमें से फिर अन्दर पानी नहीं जा सकता है। इसी कारण से कलाई पर चिकनाई लगा लेते हैं कि आस्तीनें शीघ्र सरक कर चढ़ जांय। केवल हथेली और उंगलियां नङ्गी रहती हैं जिनसे वह काम करता रहता है। इसके पश्चात् चौड़े गले को चुन कर गिरेबान के साथ पेच से कस देते हैं और दोनों कन्धों पर मन भर बोझ के दो पट लटका देते हैं, जिस बोझ से वह शीघ्र जल के तलभाग तक पहुंच जाता है। फिर उक्त गिरेबान में दो नलियां

रबड़ को लगाते हैं, जिनके द्वारा स्वच्छ वायु श्वास लेने को पहुंचती रहती है और गोताखोर अच्छी प्रकार दम लेता रहता है।

अन्त में धातु का बना हुआ एक टोप पहिना दिया जाता है जिसे गिरेबान के साथ फिर पेच से ऐसा कस देते हैं कि अन्दर पानी न प्रवेश कर सके। इस टोप में आंखों के सामने मज़बूत शीशे मढ़े रहते हैं, जिनके द्वारा वह देख सकता है। पाठकगण! अब दूसरे पृष्ठ पर के चित्र को देखिए गोताखोर जल में जाने के लिये प्रस्तुत है।

यह गोताखोर रस्से के सहारे जल के भीतर जाता है और डोंगा चलता रहता है। जहां कहीं सीप दिखाई दी कि वह उन्हें बटोर कर थैले में रखता जाता है, जो इसी काम के लिये उक्त पोशाक में बना रहता है। जब थैला भर जाता है वा उसका दम घुटने लगता है तो वह रस्से के द्वारा सङ्केत करता है; तब डोंगे पर का मनुष्य उसे जल से बाहर खींच लेता है। जो व्यक्ति रस्से की रखवाली करता है उसे 'टेण्डर' (Tender)' कहते हैं। इसे बड़ा सावधान रहना पड़ता है।

सीप निकालने के अर्थ गोतेखोरों को ६० फीट से १०८ फीट तक गहराई में जाना पड़ता है। इतने नीचे जल में लोग १० मिनट से अधिक नहीं रह सकते, यद्यपि श्वास लेने का सुभीता रहता है। इसका कारण जल और वायुमण्डल का दबाव है।

इतना सुभीता होने पर भी अब लों २०० फीट से अधिक गहराई में ये गोतेखोर नहीं जा सके। कहा जाता है कि १३० फीट की गहराई के नीचे कष्ट होने लगता है और २०० फीट नीचे पहुंच कर गोताखोर मूर्छित हो जाता है।

यदि जल निर्मल हो तो ये लोग ४० वा ५० फीट दूर तक के पदार्थ देख सकते हैं, और यदि जल बहुत गदला हुआ तो घुटने के बल चल कर हाथों से टटोल टटोल कर सीप का संचय करते हैं।

ये लोग दिन भर चाय वा काफ़ी के अतिरिक्त



गोता लगाने के लिये पोशाक पहिनता है

कुछ नहीं खाते, क्योंकि भरे पेट जल के भीतर काम नहीं हो सकता। तीसरे पहर बाद ४ बजे काम बन्द किया जाता है और छुट्टी पाने पर ये लोग अपना अपना खाना पकाते हैं। इन लोगों को सीप की खोज में किनारे से २०० मील तक दूर जाना पड़ता है, जहां उन्हें रसद जहाजों से मिलती है, जो उधर से आते जाते रहते हैं, और यही जहाज संचित सीपों को किनारे तक ले जाते हैं। यहां सीप अधिक मिलता है, पर मोती कम। कोई तो मनों सीप बटोर लेता है, पर उनमें मोती नहीं निकलते, और कोई भाग्यवान ऐसा होता है कि थोड़े से ही सीप में अच्छे मोती पा जाता है; किसीको बहुत से

छोटे मोती मिल जाते हैं। यह केवल भाग्य की बात है। जिसका भाग्य अच्छा है उसे मोती मिले, नहीं तो सीप ही सही।



दक्षिणी त्रिशूल वा सदर्न क्रास

थोड़ा काल हुआ कि आस्ट्रेलिया में एक सुन्दर गुच्छा मोतियों का मिला था। इस गुच्छे की भी अद्भुत रचना है, जो देखने में अति सुन्दर मालूम देती है।

इस मोती के गुच्छे का नाम 'सदर्न क्रास' (The southern cross) रक्खा गया है। यह विचित्र मोती का गुच्छा एक गरीब के, जो किनारे पर झाड़ू दिया करता था, जल के भीतर थोड़ी ही गहराई में मिला था। अन्त में यह मोती १०००० पाउण्ड अर्थात् १५०००० रुपए पर बिका।

पाठकगण 'गोतेखोरों की पोशाक' का वृत्तान्त पढ़ कर यह न समझ लें कि यह तो अच्छी और बेजोखिम रीति है, इसमें श्वास लेने का सुबीता है और इसमें कोई भय जान जोखिम का भी नहीं है और न कुछ कठिनाई है। किन्तु ऐसा नहीं। इन लोगों की भी जान हर दम जोखिम में रहती है। हां, इतना तो अवश्य है कि गोताखोर को अधिक कष्ट नहीं होता और वह कुछ अधिक देर तक जल में रह कर काम कर सकता है और सामुद्रिक तल की सैर भली भांति कर सकता है। परन्तु इसको भी कई प्रकार के डर रहते हैं जिससे चट जान से हाथ धो बैठना पड़ता है। कभी सांस लेने की नली फट जाती है और पानी भीतर घुस जाता है, अथवा समुद्र के नोकीले वृक्ष



गोता लगाने के लिये प्रस्तुत

से अटक कर पोशाक फट जाती है और एक दम जल भर आने से बिचारे गोताखोर का वहीं प्राणान्त हो जाता है। बोझ के कारण से ऊपर तो आही नहीं सकता। जब तक ऊपर खींचा जाय तब तक तो बहुतों का देहान्त हो जाता है। यदि भूल से कहीं कोई मक्खी वा कोई कीट पोशाक के भीतर रह जाय तो वह नाकों में दम कर देता है। इससे छुटकारा पाना भी कठिन है। कभी उसके हाथ में विषैली मछलियां वा दूसरे जन्तु जो बहुधा सीपों के नीचे रहते हैं, काट लेते हैं, जिनके काटने से बड़ी पीड़ा होती है। हां, शार्क मछली का डर कम रहता है। परन्तु इसके बदले में 'आकटोपस (Octopus) नामक एक क्रूर भयङ्कर जन्तु उसे पकड़ लेता

है, जिसे हम हिन्दी में 'अष्टपद' कह सकते हैं। देखो वह कैसा विचित्र जलचर है, जिसका शरीर मनुष्य की खोपड़ी सा है और उसके आठ सूँड हैं जिनसे वह अपना शिकार पकड़ता है। देखिए! उसने गोताखोर को सूँडों से कैसा पकड़ लिया है!*



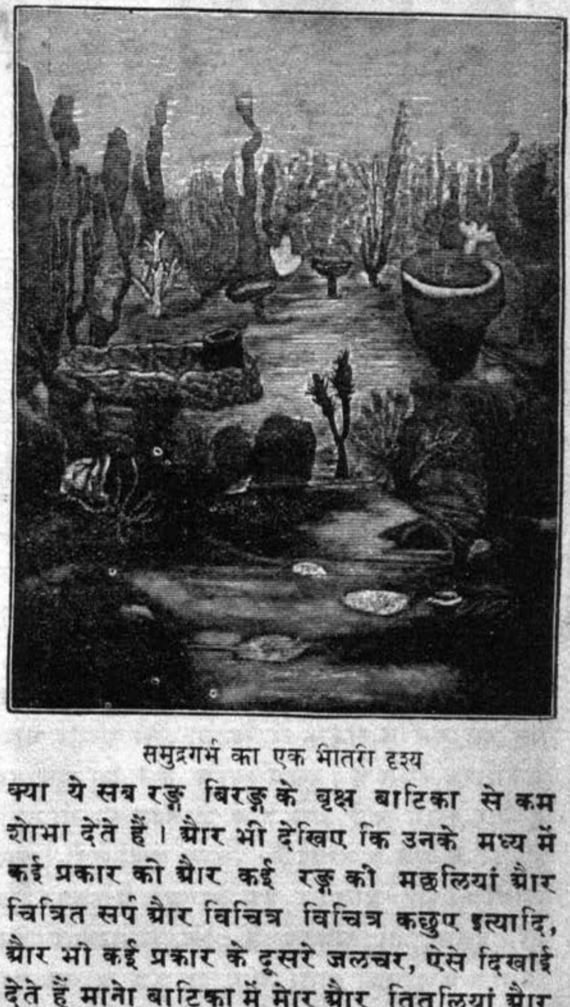
अष्टपद वा आकटोपस का आक्रमण

हाय! यह पेट क्या क्या करवाता है! हा दैव! अमीरों की थोड़ी देर की शोभा के लिये कितने बिचारे गरीबों का बलिदान हो जाता है!!

हम अपने पाठकों के आगे इस हृदयविदारक अवस्था और वृत्तान्त का अधिक वर्णन करके उनका चित्त मलीन न करेंगे। अब हम कृपालु परमात्मा की अकथनीय और विचित्र रचनाओं में से एक दृश्य पाठकों को दिखाकर उनके चित्त को हर्षित करेंगे।

जल के भीतर भी ईश्वर ने माना नई सृष्टि रची है। समुद्र के तल पर भी पहाड़, खाड़ी, मैदान, नाले, वृक्ष, लता, जीव जन्तु हैं।

देखिए कैसे कैसे सुन्दर और मनोहारी वृक्ष लगे हैं, माना विधना ने मनोहर और रमणीक बाटिका ही बनाई है। अहा हा! कितने प्रकार के वृक्ष हैं! केवल वृक्ष ही नहीं, किन्तु उनमें फूल फल भी लगे हैं। मूंगों के वृक्ष में फूलों के स्थान में मूंगे के कटोरेनुमा फूल कैसी शोभा देते हैं। कहीं स्पंज का वृक्ष है, कहीं 'अनीमोन' (Anemone) नामक लता है, कहीं सामुद्रिक पंखा लगा है।

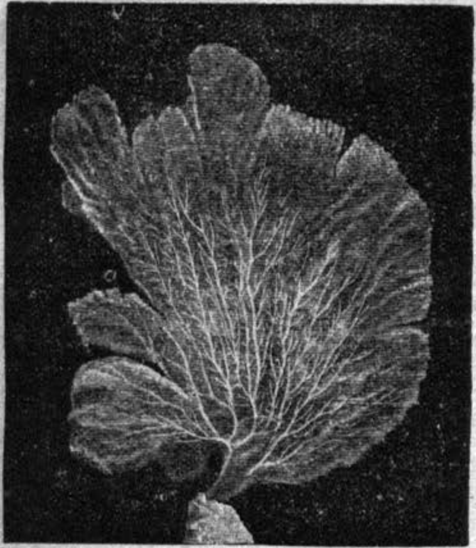


समुद्रगर्भ का एक भीतरी दृश्य

क्या ये सब रङ्ग बिरङ्ग के वृक्ष बाटिका से कम शोभा देते हैं। और भी देखिए कि उनके मध्य में कई प्रकार की और कई रङ्ग की मछलियां और चित्रित सर्प और विचित्र विचित्र कछुए इत्यादि, और भी कई प्रकार के दूसरे जलचर, ऐसे दिखाई देते हैं माना बाटिका में मोर और तितलियां और सुन्दर चिड़ियाएं कलोल कर रही हैं। कोई जन्तु पीला है, कोई लाल, कोई काला, कोई नीला, कोई हरा, कोई सुनहरा, कोई कई विचित्र रङ्गों

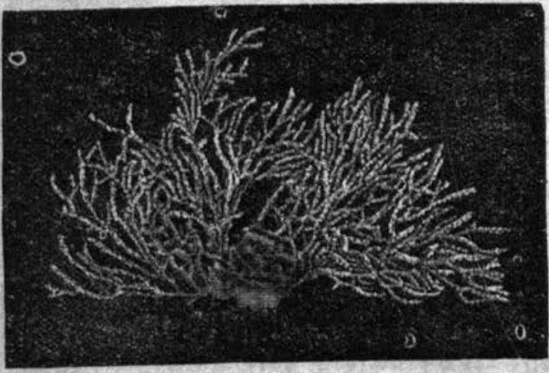
* कदाचित् इस जल जन्तु को हमारे यहां पनडुब्बा कहा है। इसकी अनेक कथाएं प्रचलित हैं और इसे भूत प्रेतादि भी परन्तु विचार कर देखने से यह जलचर ही जान पड़ता है।

वाला है। कितने प्रकार के वृक्ष हैं, कितने प्रकार के जन्तु हैं, उन्हें देखते देखते आंखें तृप्त नहीं होतीं। देखिए, यह कैसा सुन्दर वृक्ष है! इसे 'सामुद्रिक पंखा" (Sea Fan) कहते हैं और दूसरी वह लता कैसी सुहावनी है!



समुद्रगर्भ का पंखा

अहा! इन रमणीय सुन्दर वस्तुओं को देख कर वहां से बाहर आने को मन ही नहीं चाहता। इन मनोरञ्जक पदार्थों को देख कर आंखें चकित हो गई हैं मन वहीं रम रहा है। बस



सामुद्रिक लता

विचित्रस्रष्टा जगदीश्वर का स्मरण हो आता है, और चित्त उसीके गुणानुवाद में निमग्न हो रहा है। धन्य है ईश्वर! तेरी महिमा तूहीं जाने!!

ठाकुरप्रसाद

प्रताप विसर्जन

[नन्ददास जी के भ्रमरगीत की चाल]

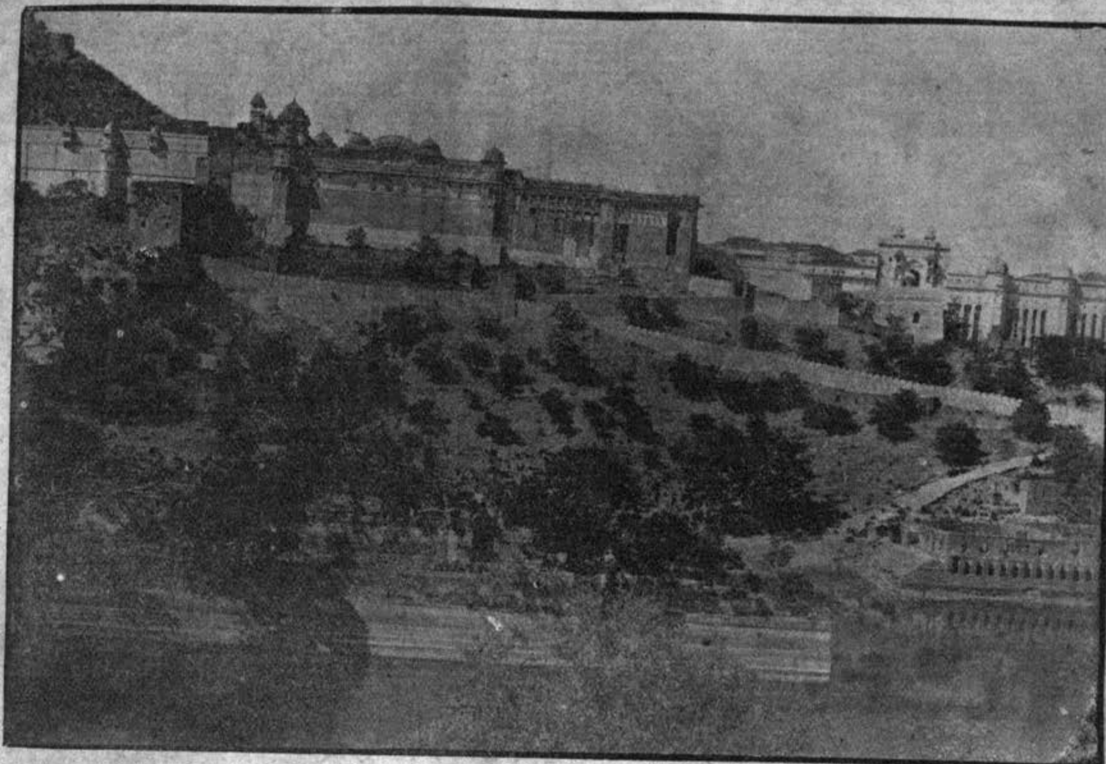
उन्नत सिर गिरिअवलि गगन सों उत
बतरावत।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत॥
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानै कोउ
अवतार
हरन भुव भार को॥

मुखमण्डल अति शांत कान्तिमय चितवन
सोहैं।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारहुं दिसि जोहैं॥
वीर मण्डली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि।
मनु भीषम सरसयन परे कौरव पाण्डव रहे
सोहि॥
हृदय उमग्योपरै॥

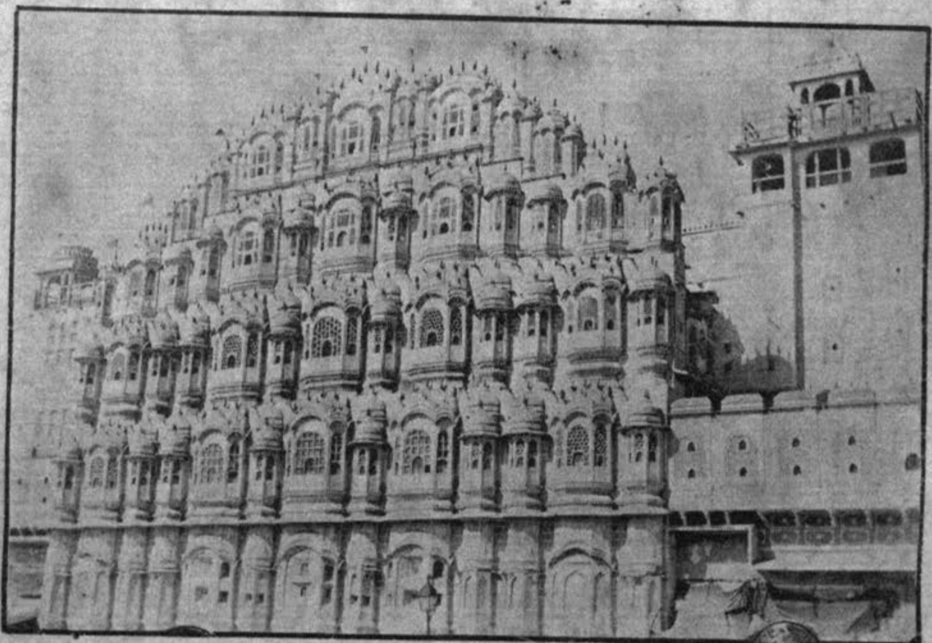
लखि निज प्रभु की अंत समय की वेदन
भारी।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी॥
रोव सलूमर रोकि निज हिय उद्वेग महान।
हाथ जोरि बिनती कियो अति हरुए लगि
प्रभु कान
बैन आरत सने॥

"अहो नाथ अहो वीरसिरोमनि भारतस्वामी।
हिन्दू कीरति थापन में समर्थ सुभ नामी॥
कहां वृत्ति है आपकी, कौन सोच कहा ध्यान?
देखि कष्ट हिय फटत है केहि सङ्कट में हैं प्रान
कृपा करिकै कहो।"

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिसि फेरयो।
भरि कै दीरघ सांस सबन तन व्याकुल हेरयो॥
पुनि लखि सुत तन—फेरि मुख अति संतप्त
अधीर।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गंभीर
परम आतङ्क सों॥



अम्बर का प्राचीन महल।



हवा-महल।

'हे हे वीरसिरोमनि सब सरदार हमारे।
हे बिपत्तिसहचर प्रताप के प्रानपियारे॥
तुव भुजबल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ।
मातृभूमि स्वाधीनता कों प्रबल सत्रु करि व्यर्थ॥
अनेकन कष्ट सहि।

प्रानन हू तें प्रिय स्वतन्त्रता कबतें खोई॥
हाय आर्यगन भए दास निज गौरव धोई।
म्लेच्छ विदेसी सत्रु के दास बनें करि गर्व॥
नस्वर तन सुख कारनैं आर्य कीर्ति करि खर्व।
भूलि निज रूप कों॥

या प्रताप नें उचित कहौ कै अनुचित भाखौ।
वा स्वतन्त्रता हेतु जगतसुख तृन सम नाखौ॥
ढाइ महल खँडहर किए सुख सामान बिहाय।
छानि बनन की धूरि कों गिरि गिरि मैं टकराय
जनम दुख झेलिकैं॥

स्वर्गहु तें बढ़ि जन्मभूमि कार रहित म्लेच्छ अरि।
सूखी रोटी अति पवित्र जल, छुधा तृप्त करि।
सो खोई बहु दिनन की सुख स्वतन्त्रता पाय॥
बन्धु बान्धव बीच मैं हम मरत आजु हरषाय।
क्लेस को लेस नहिं॥

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने।
सो अमूल्य निधि मम पाछैं रहिहै दिन कितने॥
तुच्छ वासना मैं पर्‍यो दुःख सहन असमर्थ।
चञ्चल अमरहिं देखि कै होत आस सब व्यर्थ॥
सोचि भावी दसा।"

कहि दुखमय ये बचन अमर तन दुख सों देख्यो॥
मूंदि नैन जल भरे स्वांस लै सब दिसि पेख्यो।
सन्नाटा चहुं दिसि छयो सबके मुख गंभीर॥
पृथ्वी दिसि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर।
बैन नहिं कछु कढ़ैं॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो।
अभिवादन करि अति विनीत वै बचन सुनायो॥
"पृथीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज।
कुंअर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज॥
निरासा जो भई॥

बदलि पास कछु संभरि बैन परताप कह्यो पुनि
अति गम्भीर सतेज मनहुं गुंजत केहरि धुनि॥
"सुनैा वीर मेवार के गौरव राखनहार।
मेरे हिय की बेदना—जो कियो आस सब छार॥
अमर के कर्म नै॥

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यौ।
इतनेहि मैं मृग एक आनि कै तहां जु पैठ्यौ॥
हरबराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर।
कुटिया के या बांस मैं फंस्यो पाग को छोर॥
अमर तौहु न रुक्यो॥

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जिय मैं धीर छुड़ावै ताको आछे॥
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ।
पटकि पाग लखि झोंपड़िहि अतिहि क्रोध के साथ॥
बैन मुख तें कढ़े॥

'रहु रहु रे निर्बोध अमरगति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे सांस बिना तोहि आजु उंजारे
राजभवन निर्मान करि तेरो चिन्ह मिटाइ।
जो दुख पाए तोहि मैं सो दैहैं सबै भुलाइ॥
सुखद आवास रचि॥

तबही तें ये बैन सूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख बासना अवसि दुख दिवस बिसारिय
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ बिषय के दाम
बेचि, सिसोदिय कीर्ति कें यह करिहै अवसि निकाम
रुके हम सोच एहि॥"

हिन्दूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौर्‍यो तब।

लै लै असि दृढ़ पन कियो, छ्वै छ्वै प्रभु के पाय।
"जौ लैां तन, स्वाधीनता तौ लैां रखैां बचाय॥
सङ्क करिए न कछु॥"

दृढ़प्रतिज्ञ छत्रिन पन सुनि राना मुख विकस्यो॥
आस लता डहडही भई मुख तें यह निकस्यो॥
"धन्य बीर तुम जोग ही यह पन तुम्हहिं सुहाय।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय
यहै आसीस मम॥"

देखत देखत शांतिसदन परताप सिधाए।
पराधीनता मेघ बहुरि भारत सिर छाए॥
सबही सुख परताप संग किये बिसर्जन हाय।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गंवाय॥
त्राहि प्रभु रच्छिए॥

राधाकृष्ण दास।

काकतालीय घटना

ताड़ का पेड़ पुराना हो जाने अथवा और किसी कारण से गिरने ही चाहता था कि उसपर एक कौआ आ बैठा। ज्योंही उसने उसकी चोटी पर पैर रक्खा, त्योंही वह पेड़ टूट पड़ा। आपही आप होनेवाली बात में नाममात्र के लिये जब कोई अन्य निमित्त उपस्थित हो जाता है, तब वह घटना काकतालीय न्याय की उदाहरण रूप समझी जाती है। ऐसी घटना के दो नमूने हम कथासरित्सागर से देते हैं।

जिस समय इस देश की राज्यलक्ष्मी इसी देश के नृपतिरत्नों में अनुरक्त थी, उस समय अयोध्या में प्रवरवर्म्मा नाम राजा राज्य करता था। उस राजा के भुवनमोहिनी नाम एक कन्या थी। यह कन्या सचमुच भुवनमोहिनी थी। यह सर्वाङ्गसुन्दरी जब उपवर हुई तब इसके पिता ने इसके लिये योग्य वर ढूंढ़ने में कोई बात उठा न रक्खी; परन्तु कन्या के अनुरूप उसे कोई राजकुमार न मिला। एक बार भुवनमोहिनी अपने महल के ऊपरी खण्ड पर खड़ी खड़ी सब ओर नयननिक्षेप कर रही थी, कि उसने मार्ग में जाते हुए एक बड़े ही रम्यरूप युवक को देखा। देखकर उसमें वह अनुरागवती हो गई और अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिये उस युवक के पास उसने अपनी सखी भेजी। सखी ने उस युवक के पास आकर राजनन्दिनी की अभिलाषा कही; परन्तु युवक के मन में यह शंङ्का उत्पन्न हुई कि ऐसी प्रार्थना स्वीकार करने से कहीं मेरे ऊपर कोई आपत्ति न आवै; इस लिये उसने राजकन्या की सखी के कहे हुए सन्देश का अनुमोदन न किया। इसपर उस परिचारिका ने युवक को अनेक प्रकार से विश्वास दिलाया और कहा कि कन्या की मनोऽभिलाषा पूरी करने में उसे किसी प्रकार का भय नहीं है। उस दासी ने समझा बुझाकर निकटवर्ती देवालय में राजपुत्री को सायङ्काल दर्शन देने के निमित्त आने के लिये उस युवक से अतिशय निर्बन्ध किया। इस बात को उस पथिक ने किसी प्रकार स्वीकार तो कर लिया; परन्तु दासी के वहां से चले जाने पर सम्मत हो कर भी वह उस मन्दिर में नहीं आया; भयवश उसने नगर ही छोड़ दिया।

जिस समय की यह बात है उस समय प्रतापगढ़ के बिशालबाहु नामक राजा के परलोकगामी होने पर उसका पुत्र आजानुबाहु सिंहासन पर आसीन था; परन्तु उसके कुटुम्बियों ने एका करके उससे सारा राज्य छीन लिया था।

आजानुबाहु ने, अपने शत्रुओं को परास्त करने का अन्य मार्ग न देखकर, महाराज प्रवरवर्म्मा से सहायता लेने के लिये, अयोध्या की ओर एकाकी प्रस्थान किया। सायङ्काल वह अयोध्या पहुंचा और रात व्यतीत करने के लिये उसी मन्दिर में आकर ठहरा जिसमें भुवनमोहिनी ने उस युवक पथिक से आने का सङ्केत किया था। राजकन्या भी यथासमय उस मन्दिर में आई, परन्तु अँधेरी रात होने के कारण आजानुबाहु को उसने वही पूर्वदृष्ट पथिक जाना; अतएव अपने साथ बिवाह करने के लिये

उससे प्रार्थना की। यह सुनकर आजानुबाहु बहुत विस्मित हुआ; परन्तु बिना किसी प्रतिवाद के आनन्दपूर्वक राज्यकन्या की प्रार्थना उसने स्वीकार की। इस प्रकार उस राजपुत्र के सत्यपाश से बद्ध कर और अपनेको कृतार्थ मान वह राजकन्या अपने निवासभवन को लौट आई। आजानुबाहु ने वह रात उसी मन्दिर में व्यतीत की। प्रातःकाल वह महाराज प्रवरवर्म्मा से मिला और अपना सारा वृत्तान्त उससे निवेदन किया। प्रवरवर्म्मा ने उसको अभयदान दिया और उसके शत्रुओं को परास्त करके उसका राज्य उसे वापस दिलाने का दृढ़ सङ्कल्प भी किया। इसके साथ ही आजानुबाहु के स्वरूप और गुणों पर मोहित हो कर उसे अपनी कन्या देने का भी प्रस्ताव प्रवरवर्म्मा ने किया। इस प्रस्ताव को सुनकर रातवाला सारा वृत्तान्त आजानबाहु ने प्रवरवर्म्मा से कहा और यह भी सूचित किया कि इस विषय में वह अपनी अनुमति पहले ही दे चुका है। भुवनमोहिनी ने भी इस बात को माता पिता से छिपाना अनुचित समझ कर सखी के मुख से रात की बात अपनी माता को सूचित की।

बहुत दिन तक कुमारिका रहने के अनन्तर अपना वर ढूंढ़ने की इच्छा से राजकन्या ने एक अपरिचित पथिक से मिलने का सङ्केत किया, परन्तु सङ्केतित स्थान में पथिक के स्थान में भाग्यवश उसे एक राजकुमार मिल गया। इस काकतालीय घटना को सुनकर राजा प्रवरवर्म्मा को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। राजा को, इस प्रकार, आश्चर्य्य चकित देखकर सभास्थित सर्वज्ञशर्म्मा नाम पण्डित ने कहा—"महाराज! इसमें आश्चर्य्य की कौन बात है? भवितव्यता बड़ी प्रवल होती है। इस बात को प्रमाणित करने के लिये मैं एक छोटी सी आख्यायिका आपसे कहता हूं"।

सर्वज्ञशर्म्मा ने कहा, बात कहीं दूर की नहीं है; निकटवर्ती रत्नपुर ही की है। एक बार इस नगर में देवदत्त नामधारी एक ब्राह्मण देशाटन करते हुए कहीं से आया। वह महानिर्धन था। उसके साथ उसकी स्त्री भी थी और कई पुत्र भी थे। देवदत्त ने रत्नपुर में शीलशर्म्मा नामक गृहस्थ के यहां नौकरी कर ली। इस गृहस्थ ने देवदत्त को दीनता देख उसकी स्त्री को भी अपने यहां परिचारिका के कार्य्य पर रख लिया और उसके लड़कों को भी क्षेत्रनिरीक्षण पर नियोजित कर दिया।

कुछ काल के अनन्तर शीलशर्म्मा की कन्या के विवाह का शुभ मुहूर्त आया। इस मङ्गल कार्य्य में अनेक लोग भोजन के लिये निमन्त्रित किए गए। देवदत्त ने समझा जब इतने मनुष्य निमन्त्रित हुए हैं, तब मुझे भी निमन्त्रण आवैहीगा। अतएव परिवार सहित उसने एक दिन पहले ही से कुछ नहीं खाया; अनाहार बैठा रहा। यथाक्रम जितने लोग बुलाए गए थे, भोजन करके सब अपने अपने घर गए; परन्तु देवदत्त को कोई बुलाने नहीं आया। दो दिन निराहार रहने से देवदत्त की बुरी दशा हो गई। दूसरे दिन उसने रात के समय अपनी स्त्री से कहा—"देख, मुझे दरिद्री और मूर्ख जान इन लोगों ने मेरा निरादर किया और भोजन के लिये न बुलाया; अतएव मैं एक ऐसी युक्ति करना चाहता हूं जिसमें ये लोग मेरा गौरव करने लगें। मैंने यह निश्चय किया है कि शीलशर्म्मा के दामाद का घोड़ा चुपचाप खोलकर एक ऐसे स्थान में बांध आऊं जहां किसीको उसका पता न लगै"। इस प्रकार अपनी स्त्री से परामर्श करके रात को शीलशर्म्मा के दामाद का घोड़ा खोलकर वह एक ऐसे स्थान में बांध आया जहां किसीको उसका पता न लग सके। प्रातःकाल घोड़े को न देखकर शीलशर्म्मा के आदमियों ने उसे सब कहीं ढूंढ़ डाला, परन्तु कहीं भी उसका पता न मिला। ऐसे मङ्गलमय समय में अनायास घोड़े के चुराए जाने के कारण सबके मन में बड़ाही उद्वेग उत्पन्न हुआ। परन्तु करते क्या? किसीसे कुछ न हो सका।

इसी अवसर पर देवदत्त की स्त्री ने, जैसा कि उसके पति ने उसे सिखला रक्खा था, शीलशर्म्मा

से जाकर निवेदन किया कि, मेरा पति एक प्रसिद्ध ज्योतिषी है, अतः उससे आप घोड़े के विषय में क्यों नहीं प्रश्न करते? यह सुनकर शीलशर्म्मा ने देवदत्त को बुला भेजा। जब देवदत्त आया तब शीलशर्म्मा ने उससे मीठी मिठी बातें कह कर यह प्रकट किया कि, वह बिवाह के गड़बड़ में उसे निमन्त्रण देना भूल गया था; जब घोड़ा चोरी गया तब उसे उस बात का स्मरण आया। शीलशर्म्मा ने देवदत्त से कहा कि उसको इस भूल पर आपको अपना मन मलीन न करना चाहिए। इस प्रकार चाटुकारिता करने के अनन्तर शीलशर्म्मा ने देवदत्त से घोड़े के विषय में विचार करने के लिये कहा। यह सुनकर देवदत्त ने झूठमूठ अनेक रेखाएं पृथ्वी पर खींच और अपनी उँगलियों पर कुछ उलटी सीधी गणना करके यह उत्तर दिया कि, खोया हुआ घोड़ा दक्षिण दिशा में अमुक स्थान पर मिलैगा। उसने यह भी कहा कि यदि उसे आप अभी तत्काल ही न ढूंढ़मगावैंगे तो शायद चोर उसे स्थानान्तरित करदेंगे। देवदत्त के उत्तर को सुनकर शीलशर्म्मा ने अपने मनुष्यों को जो देवदत्त के कथित स्थान को भेजा तो घोड़ा वहां बँधा हुआ सुरक्षित मिला। घोड़े को पाकर शीलशर्म्मा ने देवदत्त का बड़ा आदर किया और उसे बहुत धन देकर सन्तुष्ट किया।

कुछ काल के अनन्तर उसी नगर के राजा के यहां चोरी हो गई। उसके अनेक बहुमूल्य आभूषण उठ गए। बहुत खोज करने पर भी जब चोरों का तथा आभूषणों का कुछ पता न मिला तब देवदत्त बुलाया गया। देवदत्त की गणना की ख्याति राजा के कानों तक पहुंच चुकी थी। देवदत्त ने राजा के प्रश्न का उत्तर देने में अपने को असमर्थ समझ यह विनय किया कि मैं चोरी का पता कल लगादूंगा; विचार करने के लिये मुझे एक दिन का अवकाश दिया जाय। इस बहाने देवदत्त ने वहां से भाग जाना चाहा; परन्तु राजा ने उसे एक मकान में रख दिया और उसके द्वार पर पहरा बिठला दिया, जिसमें वह कहीं चला न जावै।

उस घर के भीतर बन्द किए जाने से देवदत्त बहुत दुःखित हुआ। अपने अभाग्य पर वह बहुत रोया और इस विपत्ति से बचने का कोई उपाय न देखकर अपनी जिह्वा को बार बार धिक्कारने लगा। उसने कहा "हे जिह्वे! तूने जो यह दुष्कर्म्म किया है उसका फलभोग करना ही पड़ेगा। बचने का अब कोई उपाय नहीं।" उसकी जिह्वा ही ने शील-शर्म्मा से झूठ बोलकर देवदत्त को गणक सिद्ध किया था। इसी लिये देवदत्त ने अपनी इस विषम विपत्ति का कारण उसेही ठहराया।

जिस राजा के यहां से आभूषणों की चोरी हुई थी उसके यहां जिह्वा नाम को एक दासी थी। इस दासी ने अपने भाई की सहायता से यह चोरी की थी। जब उसने सुना कि प्रसिद्ध ज्योतिषी देवदत्त चोरी का पता लगाने के लिये एक एकान्त घर में रक्खा गया है और राजा के प्रश्न का उत्तर उसने कल देने का वचन दिया है, तब वह बहुत घबड़ाई। उसको निश्चय हो गया कि देवदत्त उसका नाम अवश्य ही बतला देगा। उस समय उसके मन में यह आया कि छिपकर देखूं तो देवदत्त अकेले उस घर में क्या कर रहा है। यह निश्चय करके वह उस घर की ओर चली जिसमें देवदत्त बन्द था। रात के समय, वहां जाकर, पिछले द्वार पर किवाड़े की दरज में कान लगा कर वह बातें सुनने लगी। कुछ देर वहां उस प्रकार खड़ी रहने पर वह वाक्य उसे सुन पड़ा जो ऊपर दिया जा चुका है और जिसे देवदत्त ने अपनी जिह्वा को सम्बोधन करके कहा था। चूंकि उसका भी नाम जिह्वा था, अतः उस वाक्य को सुनकर उसके होश उड़ गए। उसे यह विश्वास हो गया कि देवदत्त ने जान लिया कि उसीने चोरी की है।

जब जिह्वा को यह विश्वास होगया और उसके होश हवास ठिकाने हुए, तब उसने पहरेवाले को कुछ घूस देकर भीतर प्रवेश किया और देवदत्त को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने अपराध को अपने ही मुख से स्वीकार किया। उसने देवदत्त से अपने

प्राण रक्षण के लिये बहुत ही गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की ग्रैार ग्रपने हाथ में पहने हुए कड़ों को उसके सम्मुख रख दिया। ग्रनायास ही चोर का पता लग जाने से देवदत्त मन ही मन बहुत प्रसन्न हुग्रा ग्रैार जिह्वा को इस प्रकार धमकाने लगा। उसने कहा "री पापिनी! तूने मुझ ऐसे सर्वज्ञ ज्योतिषी के रहते चैारकर्म्म करने का साहस किया। तू महा विश्वासघातिनी है! तूने ग्रपने स्वामी ही से विश्वासघात किया!! यदि मैं चाहूं तो तुझे कल्ही फांसी दिला सकता हूं; परन्तु मैं ब्राह्मण हूं। ब्राह्मण इतने निर्दयी नहीं होते; इससे मैं तेरा प्राण नहीं लेना चाहता हूं। बता तूने सब ग्राभूषण कहां रक्खे हैं?" इस प्रकार धमकाई जाने पर जिह्वा ने बतलाया कि वह सब माल मैंने राजप्रासाद के पीछे बाग़ में ग्रमुक वृक्ष के नीचे गाड़ दिया है। यह सुनकर देवदत्त ने ग्रनेक प्रकार वाग्दण्ड देकर ग्रैार जिह्वा के दिए हुए ग्राभूषण को ग्रानन्द पूर्वक ग्रहण करके उसे जाने दिया।

प्रातःकाल होते ही देवदत्त राजा के सम्मुख लाया गया। वहां जाने पर उसने घण्टों पोथी पत्रे उलटकर जिह्वा के कहे हुए स्थान पर चोरी गए हुए ग्राभूषणों का होना बतलाया। इस बात को सुनकर राजा के ग्रनुचरों ने तत्काल वहां जाकर जो खोदा तो सारा माल मिल गया। देवदत्त के विलक्षण गणनाचातुर्य्य पर राजा बहुत ही प्रसन्न हुग्रा ग्रैार यथोचित पुरस्कार देकर उसे उसने विदा किया।

कहां देवदत्त का ग्रपनी जिह्वा की गर्हणा करना ग्रैार कहां जिह्वा नामधारिणी दासी का उसे ग्रपनी ही गर्हणा समझना? काकतालीय घटनाएं ऐसी ही हुग्रा करती हैं॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

युनिवर्सिटी कमिशन *

शिक्षक विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय के मुख्य उद्देश्य (१) विद्या की उन्नति करना ग्रैार (२) उसका प्रचार करना है। इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिये विश्वविद्यालयों को शिक्षक ग्रैार परीक्षक दोनों ही होना चाहिए। जो विद्यार्थी भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों की परीक्षा देना चाहते हैं, उन्हें किसी संयुक्त विद्यालय में पढ़ना पड़ता है। ग्रतएव भारतवर्ष के विश्वविद्यालय एक प्रकार से शिक्षक भी हैं। जब लण्डन का विश्वविद्यालय केवल परीक्षा ही लेता था, तब वहां यह बात नहीं थी, ग्रतएव ग्राज कल भारतवर्षीय विश्वविद्यालयों में ग्रैार लण्डन ग्रैार ग्रोक्सफ़ोर्ड के विश्वविद्यालयों में मुख्य भेद यही है कि यहां विद्यालय देश भर में सर्वत्र बने हुए हैं, परन्तु वहां उनके केन्द्र केवल मुख्य मुख्य नगरों में ही हैं। परन्तु भारतवर्षीय विश्वविद्यालयों को इस प्रकार के शिक्षक विश्वविद्यालय बनाने में ग्रनेक ग्रनिवार्य कठिनाइयां हैं। ऐसा करने के केवल दो ही उपाय हैं। या तो प्रत्येक कालिज विश्वविद्यालय बना दिया जाय ग्रैार उनके सिनेट, सिण्डिकेट तथा फ़ेलो लोग जुदे जुदे हों; ग्रथवा भारतवर्षभर में ग्राज कल जितने कालिज हैं, वे सब उठा कर, उनके केन्द्र केवल विश्वविद्यालयों में ही स्थापित कर दिए जांय। इन दोनों में से कोई भी बात सम्भव नहीं देख पड़ती, क्योंकि शिक्षक विश्वविद्यालय का यह ग्रर्थ है कि वह विद्यालय शिक्षक, परीक्षक ग्रैार पदवी-दाता भी हो, तथा वहीं विद्यार्थियों के रहने का भी नियम हो जैसा कि यहां के मेडिकल कालिज ग्रैार इञ्जीनियरिङ्ग कालिज हैं।

* बाबू गोविन्ददास ने जो गवाही दी थी ग्रैार जिसका उल्लेख इस मास की विविध वार्ता में है, उसीका ग्रनुवाद।

परन्तु इन सब कठिनाइयों के रहते भी कोई विश्वविद्यालय शिक्षक कहलाने योग्य नहीं है जब तक कि उसमें पूर्णतया ये सब बातें न हों। अतएव हमलोगों की यह सम्मति है कि विश्वविद्यालय बी० ए० तक केवल परीक्षक ही रहे। उसकी शिक्षा इन परीक्षाओं के पीछे अर्थात् एम० ए०, डी० एस० सी०, डी० लिटरेचर और एल० एल० डी० से आरम्भ हो। बी०ए० होने के पीछे की शिक्षा के लिये स्वीकृत प्रोफ़ेसरों का नियत करना उचित होगा।

ग्रैजुएट विद्यार्थिओं के लिये विश्वविद्यालयों के विज्ञान और साहित्य की पढ़ाई के लिये कुछ छात्रवृत्ति (स्कालरशिप) भी नियत करने चाहिए जैसा कि बङ्गाल गवर्न्मेण्ट कलकत्ता विश्वविद्यालय के लिये करती है। इन वृत्ति पानेवालें के लिये यह भी आवश्यक करना चाहिए कि वे कलकत्ते की भांति देशभाषाओं में वैज्ञानिक तथा साहित्य के विषयों पर सब लोगों के समझने योग्य व्याख्यान उसी रीति पर दें, जैसा कि इङ्गलैण्ड में विश्व-विद्यालय के एक्सटेनशन सिस्टम में किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, सभा की यह अनुमति है कि प्रत्येक साल युरप से अच्छे अच्छे विद्वान ६ महीने के लिये, लगभग १००० पाउण्ड देकर विश्व-विद्यालय के केन्द्रों में ग्रैजुएट विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये बुलाए जांय। भारतवर्ष प्रोफ़ेसर रेमज़े तथा लार्ड केलविन ऐसे विद्वानों के यहां कुछ वर्ष तक ठहरने के लिये उचित पुरस्कार नहीं दे सकता, परन्तु इतना देना कोई कठिन बात नहीं होगी कि जिससे ये यहां कुछ महीनों के लिये आ सकें। प्रत्येक विश्वविद्यालय एक एक प्रोफ़ेसर बुलावे और ऐसा प्रवन्ध किया जाय कि प्रत्येक प्रोफ़ेसर एक एक महीने प्रत्येक विश्वविद्यालय के केन्द्रों में व्याख्यान दे। ऐसा प्रवन्ध करना कदाचित् कठिन नहीं होगा और यह आशा की जाती है कि इससे विद्यार्थियों के विचार उच्च होंगे, तथा शिक्षक-वर्गों की भी योग्यता बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त यदि इन श्रेणी के विद्यार्थियों के लिये कोई यूरो-पीय भाषा के, यथा फ्रेञ्च वा जर्मन पढ़ाने, का नियम कर दिया जाय तो उत्तम होगा, क्योंकि ऐसे विषयों के कई मुख्य ग्रन्थ इन भाषाओं में है।

विश्वविद्यालय में रहने के लाभों को कुछ न कुछ प्राप्त करने के लिये वे सब विद्यार्थी जिनके कालिज के नगर में सम्बन्धी या माता पिता न हों उस कालिज की धर्मशाला में रहने के लिये विवश किए जायं जिसमें कि वे पढ़ते हों।

डिग्री परीक्षा के सम्बन्ध में, हम लोगों का सविनय निवेदन है कि इन परीक्षाओं को और भी कठिन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। वे जीवन के सब आवश्यक कार्यों के लिये यथेष्ट कठिन और उच्च हैं। साधारण सरकारी आफ़िसों के लिये सरकार को विशेष विद्वानों की आवश्यकता नहीं है। परीक्षा ऐसी होनी चाहिए कि अधिकांश विद्यार्थियों के लिये सहज हो और उन्हें परीक्षा देने तथा उसमें उत्तीर्ण होने में सुगमता हो। जिन लोगों को किसी विषय अथवा विषयों में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये समय, द्रव्य और मन है, उनके लिये उच्चतम परीक्षाएं, यथा डी० एस सी०, डी० लिटरेचर, आदि होनी चाहिएं। परन्तु ऐसे लोग स्वभावतः थोड़े निकलेंगे। बङ्गाल में इस अभाव को प्रेमचन्द रायचन्द की स्कालरशिप कुछ अंश में दूर करती है। अतएव सभा की प्रार्थना है कि जिन युनिवर्सिटियों में ये उच्चतम परीक्षाएं न होती हों, उनमें ये परीक्षाएं तथा उनकी पढ़ाई जारी की जांय।

साधारण एफ़० ए० और बी० ए० की परीक्षाओं के लिये यह बात आवश्यक न की जाय कि जो लोग इन परीक्षाओं को देना चाहें उन्हें किसी संयुक्त कालिज में पढ़ कर अपनी उपस्थिति का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना वाध्य हो; परन्तु इस सम्बन्ध में मद्रास युनिवर्सिटी का नियम (सन् १९०१-०२ का केलेण्डर भाग १, पृष्ठ ४८ और ५४) ग्रहण किया जा सकता है।

मद्रास युनिवर्सिटी में हरेक विद्यार्थी को परीक्षा के लिये तीन विषय लेने पड़ते हैं और साथ हो इसके वह किसी एक वर्ष में अपनी रुचि के अनुसार किसी एक विषय में, वा दो विषयों में, अथवा तीनों विषयों में परीक्षा देसकता है। यदि वह इन विषयों में से किसी में उत्तीर्ण हो जाय, तो उसे आगामी वर्षों में उस विषय में फिर परीक्षा नहीं देनी पड़ती।

इसके अतिरिक्त परीक्षा की फ़ीस भी प्रत्येक विषय की अलग अलग लगती है, यथा अंगरेज़ी की १२), दूसरी भाषा का ६), विज्ञान की १८) आदि। ये बड़े अच्छे नियम हैं और इनका प्रचार सब युनिवर्सिटियों में होने के लिये सभा विशेष ज़ोर देती है। ऐसा होने से विद्यार्थियों को अपनी परीक्षा के सब विषयों को पूर्ण रीति से अध्ययन करने का अवसर मिलेगा और उपाधिप्राप्त लोग आज कल की अपेक्षा अधिक योग्य होंगे। इस नियम के अवलम्बन करने से, उपाधिप्राप्त लोग आज कल की अपेक्षा किसी प्रकार से न्यून नहीं होंगे; क्योंकि भिन्न भिन्न विषयों के अध्ययन के लिये जो अधिक समय दिया जाता है, इससे यदि कोई दोष भी होगा तो वह भी दूर हो जायगा। शिक्षा, द्रव्य सम्बन्धी सार को छोड़ कर, शिक्षा ही के हेतु, अर्थात् ज्ञानोद्दीप्ति के हेतु दी जानी चाहिए और उसको उन्नतिकिसी अवस्था में नहीं रोकी जानी चाहिए। अतएव बी० ए० की परीक्षा आज कल से अधिक कठिन न की जानी चाहिए और उसकी परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के लिये हरेक प्रकार की सुगमता होनी चाहिए।

क़ानून

जब कि साहित्य और विज्ञान की परीक्षाओं के केन्द्र बनाने का कोई यत्न नहीं किया जाता, तो केवल क़ानून के लिये केन्द्रस्थ कालिज का होना उचित नहीं जान पड़ता। प्रथम श्रेणी के कालिज, यदि वे क़ानून की पढ़ाई के लिये उपयुक्त प्रबन्ध कर सकें, तो उन्हें बी० एल० या एल० एल० बी० उपाधि के लिये सहायक बना लेना चाहिए, जैसा कि आज कल कलकत्ता युनिवर्सिटी में किया जाता है।

हम लोगों की दूसरी प्रार्थना यह है कि जो लोग वकालत कर रहे हों, तथा और सब प्रकार से योग्य हों, उनके लिये उपस्थिति के प्रमाण पत्र की आवश्यकता न होनी चाहिए, क्योंकि वे लोग उससे कहीं बढ़ कर शिक्षा पाते हैं जोकि किसी कालिज में मिल सकती है।

इसके अतिरिक्त हम लोग चाहते हैं कि क़ानून की उच्चतम पढ़ाई को उचित उत्साह दिया जाय। एल० एल० बी० लोगों की अपेक्षा एल० एल० डी० लोगों को कचहरियों में वकालत करने में तथा उच्चतम दीवानी विभाग की नौकरियों के पाने में कुछ अधिक अधिकार दिया जाय। जो लोग किसी युनिवर्सिटी की एल० एल० डी० परीक्षा में उत्तीर्ण हों, वे भिन्न भिन्न प्रान्तों के न्यायालयों में वकालत करने पावें और यही अधिकार एल० एल० बी० लोगों को भी दिया जाय यदि वे प्रान्तिक क़ानून की परीक्षा में, जो कि प्रत्येक प्रान्त में इसी हेतु हुआ करे, उत्तीर्ण हों। यह बात इलाहाबाद हाईकोर्ट के वकीलों और एल० एल० बी० लोगों के लिये, जो कि अवध में वकालत करना चाहते हैं, होती है। उन लोगों के लिये यह भी आवश्यक किया जाय कि वे हिन्दू अथवा मुसलमानी क़ानून को मूल संस्कृत वा अरबी के ग्रन्थों से पढ़ें। न्यायालयों के सम्मुख हिन्दू वा मुसलमानी क़ानून के पेचीले मुक़द्दमें बहुधा उपस्थित होते हैं। अतएव एल० एल० डी० विद्यार्थियों के लिये इन क़ानूनों का मूल ग्रन्थों से पढ़ना कुछ अनुचित नहीं है।

इञ्जीनियरी

ऐसे कालिजों में यथा रुड़की कालिज में भरती करने और स्कालरशिप तथा नौकरियां देने में प्रान्त और जाति का विचार करना अन्याय है। ऐसी बाधाएं डालने से इन कालिजों के लाभ को बड़ी हानि पहुंचती है। ये युनिवर्सिटी के आधीन होने चाहिएं और

इनमें भरती होने के नियम ऐसे हो जो कि सबके लिये एक हों। हम लोगों को इसका कोई कारण नहीं दिखलाई देता कि इन कालिजों में भरती होने वालों के लिये जाति पांति और धर्म की बाधा क्यों डाली जाती है। रुड़की इञ्जीनियरिङ्ग कालिज इलाहाबाद युनिवर्सटी में सम्मिलित किया गया है और इस युनिवर्सिटी में एक फ़ेकलटी आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग भी है; परन्तु हम लोगों की समझ में नहीं आता कि इस सम्मिलित करने तथा फ़ेकलट बनाने से क्या तात्पर्य है जब कि युनिवर्सिटी न तो परीक्षा के विषय नियत करती है, न परीक्षा ही लेती है और न उपाधि ही देती है।

इलाहाबाद युनिवर्सिटी केलेण्डर में रुड़की इञ्जीनियरिङ्ग कालिज की स्थिति विचित्र जान पड़ती है। यह कालिज स्वयम् ही एक जुदी युनिवर्सिटी है और फिर भी इलाहाबाद युनिवर्सिटी में सम्मिलित है, यद्यपि इस युनिवर्सिटी को उस कालिज सम्बन्धी किसी विषय में अधिकार नहीं है।

हम लोग इस बात पर विशेष जोर देंगे कि रुड़की कालज को परीक्षा साहित्य और विज्ञान की परीक्षाओं की नाईं सीधे युनिवर्सिटी द्वारा हो, जैसा कि मद्रास, बम्बई और कलकत्ते की युनिवर्सिटियों में होता है, अर्थात् ये युनिवर्सिटिएं पाठ्य पुस्तकें नियत करती हैं और उपाधि भी देती हैं। आज कल भिन्न भिन्न युनिवर्सिटिएं इञ्जीनियरिङ्ग के लिये जो उपाधि देती हैं वे भिन्न भिन्न हैं। ऐसा न होना चाहिए; यथा बम्बई युनिवर्सिटी की एल० सी० ई० और एम० सी० ई०, पञ्जाब की सी० ई० (प्रथम परीक्षा), मद्रास की बी० ई० और कलकत्ते की बी० ई० और एम० ई०। इन सभों के स्थान पर केवल बी० ई० और एम० ई० की उपाधि दी जाय। इसके अतिरिक्त हम लोगों की अनुमति है कि शिक्षक लोगों को रायल इञ्जीनियरों में से नियुक्त करने की प्रथा उठा दी जाय और वे लोग भिन्न भिन्न विषयों के निपुण लोगों में से चुने जाया करें।

डाक्टरी

वैद्यक की परीक्षाओं के सम्बन्ध में हम लोग यह अनुमति देंगे कि संयुक्त प्रदेश में भी कई अन्य युनिवर्सिटियों की नांईं प्रान्तिक युनिवर्सिटी के आधीन एक मेडिकल कालिज स्थापित किया जाय जो कि एम० बी० और एम० डी० उपाधि दे। यह बात आगरा मेडिकल स्कूल को बढ़ा देने और उसे प्रान्तिक युनिवर्सिटी में सम्मिलित कर लेने से, सहज ही में हो सकती है। मेडिकल कालिजों के शिक्षकगण भी बहुधा इण्डियन मेडिकल सर्विस में से नियुक्त किए जाते हैं। अतः इञ्जीनियरिङ्ग की नांईं इसमें भी शिक्षक लोगों का चुनाव एक विशेष श्रेणी के लोगों में से नहीं होना चाहिए। यह रीति उस अवस्था में बहुत ही हानिकारक होती है जब कि प्रोफ़ेसर लोग एक विषय को पढ़ाते पढ़ाते दूसरे विषय पढ़ाने लगते हैं अथवा जब उन्हें प्रोफ़ेसरी छोड़ कर भिन्न भिन्न नगरों में डाक्टरी का सर्कारी काम करना पड़ता है।

सब मेडिकल कालिजों में आयुर्वेदी और यूनानी रीतियों के पढ़ाए जाने के लिये एक जुदा विभाग होना चाहिए। क्योंकि ये इस देश की विद्याएं होने के कारण सर्वसाधारण के स्वभाव तथा वित्त के अनुकूल हैं और अशिक्षित लोग अङ्गरेजी दवाइयों की अपेक्षा इसका अधिक प्रयोग करते हैं। इन रीतियों के प्रचलित करने और वैज्ञानिक अध्ययन से बहुत लाभ होगा और बहुत से हिन्दुस्तानी लोग उन टुटपुञ्जियों के हाथ से बचेंगे जो कि समाज के लिये एक भय और आपदा के कारण हैं और जिनकी संख्या दुर्भाग्यवश बढ़ रही है। हमलोगों की अनुमति है कि इनकी पढ़ाई देशभाषाओं में हो और इनमें अनाटमी, सर्जरी आदि विषय भी पढ़ाए जायं। ऐसा करने से आयुर्वेदी और यूनानी विद्यार्थी लोग योग्य वैद्य और हकीम हो जायंगे और इस प्रकार से एक बड़ा अभाव दूर हो जायगा, जिसके कारण हिन्दुस्तानी लोग बहुत हानि उठा

रहे हैं। इसके अतिरिक्त हमलेगों की यह भी अनुमति है कि युनिवर्सिटी इस विभाग के विद्यार्थियों को एक जुदी ही रीति से परीक्षा लेकर उन्हें उपाधि दे।

कृषि

भारतवर्ष के कृषिप्रधान देश होने के कारण, इस विभाग में रीत्यनुसार तथा वैज्ञानिक शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है और बिना इस विषय के सम्मिलित किए, जैसा कि बम्बई युनिवर्सिटी में होता है, कोई युनिवर्सिटी शिक्षा पूरी नहीं कही जा सकती। इसका बीज कानपुर एग्रिकलचरेल स्कूल में है। वह सहज ही में कालिज बनाया जाकर युनिवर्सिटी में मिलाया जा सकता है जैसा कि ऊपर मेडिकल और इञ्जीनियरिङ्ग कालिजों के सम्बन्ध में प्रस्ताव किया जा चुका है।

शिक्षकगण

विश्वविद्यालयों में शिक्षाप्रणाली में भी परीक्षाएं ली जानी चाहिए। इलाहाबाद में एक ट्रेनिङ्ग कालिज है जोकि शिक्षक, परीक्षक तथा उपाधिदाता तीनों ही है और शिक्षा विभाग के अधीन भी है। हमलोग चाहते हैं कि उसकी परीक्षाएं भी विश्वविद्यालय द्वारा हों जैसा कि मद्रास में होता है और जैसा कलकत्ते में होने का प्रस्ताव किया गया है।

युनिवर्सिटियों की अधिकार-सीमा

हम लोगों को विश्वविद्यालयों के अधिकार को सीमाबद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि पहिले तो किसी किसी प्रान्त में विश्वविद्यालय ही नहीं हैं और दूसरे भिन्न भिन्न विद्यालयों की पुस्तकें तथा उनके उपाधियों के द्रव्यसम्बन्धी निरूपण भिन्न भिन्न हैं। परन्तु यदि ये समान भी कर दिए जायं, और ऐसा अनेक कारणों से होना आवश्यक है, तौ भी यह बात उचित है कि भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों को किसी विशेष विषय की पढ़ाई में अधिक अनुराग दिखलाना चाहिए जैसा कि आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में है। इन अवस्थाओं में प्रत्येक कालिज को अधिकार देना चाहिए कि वे जिस किसी एक वा एक से अधिक विश्वविद्यालयों में सम्मिलित होना चाहें उनमें हों, यदि वे उनके सम्मिलित करने के नियमों को पूरा पूरा पालन कर सकें।

सेनेट

यह बात सत्य है कि किसी किसी विश्वविद्यालय में सेनेट बहुत ही बड़ी हो गई है। परन्तु इलाहाबाद की सेनेट संख्या जैसी कि होना चाहिए वैसी ही है। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि कुछ फ़ेलो के पद केवल प्रशंसोक्ति की भांति दिए गए हैं। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों की सेनेट ने फ़ेलो चुनने में गवर्मेण्ट की अपेक्षा अधिक विवेक दिखाया है। गवर्मेण्ट के कुछ नियुक्त लोग तो केवल मूर्तिमात्र हैं, जोकि अंगरेज़ी का एक शब्द भी नहीं जानते और न शिक्षा सम्बन्धी बातों में कुछ भी ज्ञान रखते है। ऐसा नियोजन बन्द कर देना चाहिए।

हम लोगों की अनुमति है कि भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों के फ़ेलो लोगों की संख्या १२५ और १५० के भीतर होनी चाहिए।

फ़ेलो लोगों की योग्यता के सम्बन्ध में हम लोग यह अनुमति देंगे कि जो लोग शिक्षासम्बन्धी, विद्याविषयक और अन्वेषण के काम में लगे हैं और जो शिक्षासम्बन्धी बातों में उत्साह और अनुराग रखते हैं वे सब फ़ेलो के पद के लिये ग्रहणीय हों। यदि कोई फेलो निरन्तर ४ अधिवेशनों में अथवा दो वर्ष तक उपस्थित न हो तो उसका पद खाली समझा जाय। परन्तु वे लोग जो भारतवर्ष से सदैव के लिये वा दो वर्ष से अधिक के लिये चले जांय, वे भारतवर्ष से प्रस्थान करने की तिथि से फेलो न समझे जांय। फेलो के पद की अवधि के सम्बन्ध में हम लोग यह कहेंगे कि न तो बहुत ही अल्प समय और न स्थायी नियोजन ही विश्वविद्यालय के लिये हितकारी होगा। पहिली बात से उन लोगों को

घड़ी घड़ी चुनने का व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ेगा, तथा उन लोगों को अपना कर्तव्य पूर्णतया जानने का भी समय नहीं मिलेगा; और दूसरी बात से यह होगा कि वृद्ध और क्षीणशक्ति के लोग मेम्बर रहेंगे और नवीन उमङ्ग के मनुष्य वञ्चित रक्खे जायंगे।

सभा की अनुमति में इसके लिये १० वर्ष ठीक और उचित समय होगा। इससे अवश्य ही वे लोग पुनः चुने जाने से नहीं रोके जाते। जो पद जिस वर्ग में खाली हो वह पद इसी वर्ग से पूर्ण किया जाय, अर्थात् गवर्मेण्ट से, सेनेट से वा ग्रेजुएटों से जैसी समय समय पर आवश्यकता हो।

हम लोगों की अनुमति है कि फेलो के पद इस प्रकार विभाजित किए जांय—चान्सेलर, शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर, स्कूलों के इन्स्पेक्टर और सब प्रथम और द्वितीय श्रेणी के कालिजों के प्रिन्सिपेल लोग फेलो हों। बाकी के फेलो के पद गवर्न्मेण्ट, सेनेट और पांच वर्ष पूर्व हुए ग्राजुएटों में बराबर बराबर बांट दिए जांय। परन्तु वे ग्राजुएट जिन्होंने उच्चतम उपाधि यथा एम० ए०, डी० लिट०, डी० एस सी० आदि प्राप्त की हो, उन्हें चुने जाने वा सम्मति देने का अधिकार प्राप्त करने के लिये ५ वर्ष तक ठहरने की आवश्यकता न रक्खी जाय।

सिण्डिकेट

सिण्डिकेट के सम्बन्ध में हम लोग उसके कानून से नियमित किए जाने में कोई दोष नहीं देखते। परन्तु सेनेट को उस पर सदैव पूर्ण अधिकार होना चाहिए और उसके नियमादि सेनेट ही द्वारा बनाए जाने चाहिए।

मद्रास विश्वविद्यालय की सिण्डिकेट, जिसमें केवल ९ सभ्य हैं, बहुत ही छोटी है। परन्तु इलाहाबाद की सिण्डिकेट, जिसमें १९ सभ्य हैं, लगभग ठीक है।

हम लोगों की अनुमति है कि पंजाब की नांई उसमें २१ सभ्य होने चाहिए। यदि केवल साधारण नित्य कर्म सब-कमेटियों के आधीन कर दिया जाय तो इससे कार्य में सुगमता हो जायगी। चुनाव इस प्रकार से हो—

वाइस चेन्सेलर		
शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर		
कालेज के ५ प्रिन्सिपिल		
फेकल्टी आफ आर्टस् के	४	प्रतिनिधि
,, ,, सायंस	३	,,
,, ,, ला	३	,,
,, ,, मेडिसिन	२	,,
,, ,, इञ्जिनियरिङ्ग	२	,,

सिण्डिकेट के जो मेम्बर निरन्तर तीन अधिवेशनों में उपस्थित न हो, वह उस पद से च्युत कर दिया जाय और उसके स्थान पर दूसरा चुना जाय। सिण्डिकेट के मेम्बरों का चुनाव कलकत्ता और मद्रास की नांई किसी एक ही नगर में सीमाबद्ध न किया जाय और ये लोग दो वर्षों के लिये चुने जांय। आज कल इसकी रीति के विषय में बड़ा भेद है।

जो गवर्न्मेण्ट कालेज नहीं हैं वे सिण्डिकेट में उचित रीति से नहीं रक्खे जाते। परन्तु जिस रीति का हमलोग प्रस्ताव करते हैं उससे यह दोष जाता रहेगा।

फेकल्टी

हमलोगो की अनुमति में प्रत्येक फ़ेलो को एक न एक फ़ेकेल्टी में होना चाहिए। यदि कोई फ़ेलो इस योग्य न हो कि फ़ेकल्टी में रक्खा जाय तो वह फ़ेलो चुने जाने योग्य नहीं है। यदि भिन्न भिन्न फ़ेकल्टी और बोर्ड आफ़ स्टडीज़ चुने हुए शिक्षकों और ग्राजुएटों की पाठ्य पुस्तकों के चुनने में सम्मति लें तो कोई हानि नहीं है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि फ़ेकल्टीज फेलो लोगों को चुने। गवर्न्मेण्ट, सेनेट और ग्राजुएटों को योग्य प्रार्थिओं में से चुनाव करना चाहिए। फ़ेकल्टीज़ को यदि साल में दो बार नहीं तो एक बार अवश्य मिलना चाहिए।

ग्रैजुएट

ग्रैजुएटों द्वारा फ़ेलो लोगों के चुने जाने के लिये और ऊपर लिखे अनुसार फ़ेकेल्टीज़ के उनसे अनुमति लेने के लिये ग्रैजुएटों की एक सभा बनाई जाय जैसा कि मद्रास में सन् १८८३ में डाकृर विलसन ने प्रस्ताव किया था। ऐसी सभा स्थापित करने के लिये मद्रास विश्वविद्यालय की सेनेट ने एक बिल बनाया था। इससे ग्रैजुएटों का सम्बन्ध विश्वविद्यालय की चर्या पूरी करने के पीछे भी उनसे रहेगा और इस प्रकार से उनका विद्याविषयक तथा शिक्षासम्बन्धी जीवन उत्तेजित होता रहेगा।

हमलोगों की यह दृढ़ अनुमति है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय को अपने ग्रैजुएटों की नामधाम-सूचक पुस्तक अवश्य रखनी चाहिए।

हमलोग यह भी अनुमति देंगे कि विश्व-विद्यालय का केलेण्डर मद्रास की नांई इस भांति भागों में विभाजित किया जाय—

(१) प्रथम भाग में कानून, नियम, उपनियम स्कालरशिप और सम्मिलित कालेज आदि की नामावली हो।

(२) दूसरे भाग में परीक्षा के प्रश्न हों।

(३) तीसरे भाग में उत्तीर्ण विद्यार्थियों के और उन ग्रैजुएटों की नामावली हो जिनको विश्वविद्यालय सम्बन्धी बातों में सम्मति देने का अधिकार हो।

इसके अतिरिक्त केलेण्डर में विषयों, फेलो ग्रैजुएटों तथा पारितोषिक पाने वालों आदि लोगों की सूची और सेनेट तथा सिण्डिकेट के अधि-वेशन की तिथि भी होनी चाहिए।

विश्वविद्यालयों को यह अधिकार रहे कि वे सम्मिलित कालेजों के अध्यापकों की प्रार्थना पर केवल उन्हें वेही उपाधियां दें जिन्हें उन्होंने अन्यत्र भी पाया हो। (शेष आगे)

लाला हंसराज जी, बी० ए०

पाठक! इस अङ्क में हम आपकी सेवा में एक सच्चे पुरुष का चित्र अर्पण करते हैं। लाला हंसराज जो उन पुरुषों में से हैं, जो आज कल के गए गुज़रे समय में भी हमारी जाति के भूषण हैं; जिनके सद्भाव से हमको आशा होती है, कि हिन्दु जाति अभी बिलकुल मृत्यु को प्राप्त नहीं हुई। किसी जाति के जीवित जाग्रत रहने का बड़ा चिन्ह यह होता है, कि वह समय समय पर इस प्रकार के पुत्र उत्पन्न करे जो अपने आपको जाति की सेवा के अग्निकुण्ड में आहुति कर दें; जो अपना सर्वस्व ही अपनी जाति के ऊपर निछावर कर दें। इस समय भी हमारे देश में विद्वान, कवि, गणितविद्या के जाननेवाले, वैयाकरण और मीमांसक आदि बहुत हैं; धनाढ्य पुरुष भी बहुत हैं; राजे महाराजे भी अनेक हैं; सरकारी टाइटलवाले महाशय तो गली गली कूचे कूचे में हैं; प्रिन्सिपल और प्रोफेसर भी अधिक हैं; प्रधान और मन्त्री भी बहुत हैं;—परन्तु ऐसे सज्जन बहुत कम हैं, जिनमें हमको जाति की प्रीति उस अंश तक दिखाई देवे जिससे हम उनको पूर्ण देशहितैषी कह सकें। इसमें सन्देह नहीं कि, इस समय देश में चारों ओर से देशहित का कोलाहल होरहा है और कुछ न कुछ देशहित प्रतीत भी होता है। पर तौभी सच्चे देशहितैषी बहुत कम हैं। जितने हैं उनमें से लाला हंसराज जी बड़े उच्चश्रेणी के हैं और उस श्रेणी में भी बड़े उच्चपद के योग्य हैं। सच तो यह है, कि हमको सारे देश में सिवाय दो तीन पुरुषों के कोई भी ऐसा भारतवासी नहीं जान पड़ता जिसके जाति-सेवा के भाव को हम लाला हंसराज के मनोभाव से तुलना दे सकें। शायद अभी योग्य समय नहीं आया, कि हम लालाजी का जीवन-चरित्र लिखने का उद्योग करें, तौभी आपको संक्षेप से उनका काम बतादेना लाभ से खाली न होगा।

सारे देश में शायद ही कोई पढ़ा लिखा पुरुष होगा, जो यह न जानता हो कि लाला हंसराज जी लाहौर के दयानन्द एंगलो वैदिक कालेज के आनरेरी प्रिन्सिपल हैं। सन् १८८६ ई० से लेकर इस समय तक वे इस पर नियत हैं और आज तक एक पैसा उन्होंने वेतन का नहीं लिया। इस गिरे हुए देश में और फिर इस अधोगति को प्राप्त हुई जाति में आज कल के समय में यह शायद पहिला ही उदाहरण है जिसमें एक ऐसे ऊंचे दर्जे की अंगरेज़ी शिक्षा और डिगरी पाए हुए युवक ने अपने जीवन को इस प्रकार विद्यावृद्धि और धर्मप्रचार के काम पर निछावर किया हो। लाला हंसराज जी ने सन् १८८५ ई० में पञ्जाब युनीवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा पास की और सारे प्रान्त में दूसरे पद पर रहे। प्रथम पद पर उनके मित्र और पञ्जाब के भूषण स्वर्गवासी पं० गुरुदत्त जी थे। पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज जी में विद्यार्थी अवस्था में अत्यन्त प्रेम था। पण्डित जी को लाला जी की गम्भीरता, उनके देशहितजनक विचार और उनकी विज्ञता पर बड़ा विश्वास था और धर्म प्रचार और देशहित के विचारों में वे दोनों प्रायः सहमत थे। मुझको भी इन दिनों में इन दोनों भद्र पुरुषों से प्रेम रखने का गौरव प्राप्त था, क्योंकि मैं भी उसी श्रेणी में पढ़ता था। लाल हंसराज जी के पिता उनकी बाल्यावस्था ही में परलोक सिधार गए थे और इसलिये कुटुम्ब का सारा भार उनके बड़े भ्राता लाला मुलकराज भल्ला की कमाई पर था जो अब तक चला आता है। ऐसा मालूम होता है कि इन दोनों भाइयों ने पहिले ही से यह निश्चय कर लिया था कि, एक भाई तो धन कमावे और दूसरा भाई देश की सेवा करे। यह विचार भी प्रगट करता है कि इन दोनों भाइयों के हृदयों में देशसेवा की अग्नि कैसी प्रज्वलित है। और यदि लाला मुलकराज जी अपने देश की सेवा के लिये और कुछ भी न करते, केवल इतना ही पर्य्याप्त समझते, तौभी उनकी देशहितैषिता उस उच्च कक्षा की होती कि दूसरों के लिये उदाहरण बनती। परन्तु लाला मुलकराज का जातिहित इससे भी बहुत अधिक विशाल है। वे सचमुच उन पुरुषों में से हैं जिनके हृदय में जातिसेवा की अग्नि प्रबल वेग से जल रही है और लोक की शेष सारी कामनाओं को फूंक कर राख बना रही है। उनके लेख इस बात की पूर्ण साक्षी देते हैं। पर सच तो यह है कि उनका जातिप्रेम लेख में भी नहीं आसकता, उसको तो थोड़ा सा वही मनुष्य अनुभव कर सकता है जिसको कुछ समय उनके चरणों में व्यतीत करने का अवसर मिले। लाला मुलकराज जी भल्ला सरकारी नौकर हैं। रेलवे में अकौण्टेण्ट हैं। इस समय उनको दो सौ रुपए से अधिक वेतन मिलता है। पर जिस समय लाला हंसराज जी कालेज में पढ़ते थे उनकी आमदनी बहुत कम थी।

भारतवर्ष में अनेक धर्म्म माने जाते हैं। हिन्दू, मुसलमान, जैन, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, इत्यादि इत्यादि कितने ही मत के प्रचण्ड विश्वासी भारतमाता की गोद में खेला करते हैं। परन्तु यह ऐसा समय है जब परस्पर एक दूसरे के मतान्तर के कारण विरोध न कर देशहितकर गुणों को आदर से ग्रहण कर सब भाई एकमत हो कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हों। लाला हंसराज जी एक सच्चे आर्य्यसमाजी हैं, परन्तु यदि हमारे पाठकों में से ऐसे लोग हों जो उनसे एक मतावलम्बी नहीं हैं, उनको उचित है कि लालाजी की उच्च हृदयता को आदर्शस्थल मान उनके सद्गुणों से लाभवान हों। 'सरस्वती' पत्रिका में धर्म्मसम्बन्धी लेख छापने का नियम नहीं है। इससे लाला साहब के धर्म्मजीवन के व्यापारों को छोड़ हम लोग उनकी अन्यान्य घटनाओं ही की आलोचना इस लेख में करेंगे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती सन् ८३ ई० में परलोक को सिधारे और उसी समय से उनके स्मरण में दयानन्द एंगली-वैदिक कालेज स्थापन करने का काम आरम्भ हुआ। पर आर्य्यसमाज की अवस्था

उस समय निर्बल थी। न उसमें धनाढ्य पुरुष थे और न दूसरे प्रकार से बड़े दर्जे के आदमी थे। इस लिये अत्यन्त पुरुषार्थ करते हुए भी सन् ८६ के जून तक केवल ३६ हजार रुपया इकट्ठा हो सका। ला० हंसराज ने सन् ८५ ई० में बी० ए० परीक्षा पास की और उस साल नवम्बर में लाहौर आर्य्य-समाज के उत्सव पर यह इच्छा प्रकट की कि वे इस विद्यालय में बिना वेतन के अपना जीवन लगा दें। उनके इस उत्साह पर कालेज-कमेटी ने जून सन् ८६ ई० में स्कूल खोल दिया। ला० हंसराज ने अपनी विद्या, परिश्रम और दृढ़ प्रयत्न से बहुत शीघ्र पढ़ाने में सुख्याति प्राप्त करली और उनकी और उनके स्कूल की ख्याति सुनकर लोग दूर दूर से अपने बच्चों को भेजने लगे। स्कूल और बोर्डिंग सब भर गए और लोग हैरान थे कि इस स्कूल को इतनी सफलता हो रही है। सन् ८८ ई० में पहिली बार एफ० ए० की श्रेणियां खोली गईं। पहिले पहल उनको भी अङ्गरेज़ी ला० हंसराज स्वयं ही पढ़ाते रहे। फिर सन् ९० ई० में कालेज में बी० ए० की श्रेणियां खोल दी गईं और इसके कुछ समय पीछे संस्कृत की एम० ए० क्लास भी खोल दी गई और कालेज सम्पूर्ण हो गया।

ला० हंसराज ने कालेज में एफ० ए० की श्रेणी में संस्कृत अक्षर आरम्भ किए और एफ० ए० की परीक्षा में संस्कृत ली और उसमें उत्तीर्ण हुए। उसके पीछे बी० ए० में भी संस्कृत ली और फिर स्कूल और कालेज का काम करते हुए संस्कृत विद्या में परिश्रम करते रहे। इन सब परिश्रमों का यह परिणाम हुआ कि वह शरीर जो बचपन में ही गम्भीर विचारों और विद्या में पुरुषार्थ करने के कारण अति दुर्बल था और भी दुर्बल हो गया और लाला हंसराज के मित्रों को उनकी जान का फिकर हो गया। डाक्टर लोग तपेदिक कहकर डराने लगे और कहने लगे कि लाला हंसराज को लाहौर से चला जाना चाहिए। बहुत दिन तक तो ला० हंसराज ने इसे स्वीकार न किया। उन्होंने सोचा कि ऐसा न हो कि लोग यह समझें कि अभी से थक गए और अब काम से जी चुराते हैं। फिर जब ला० साईं दास, ला० मुलकराज और दूसरे मित्रों ने बहुत ज़ोर दिया तो उन्होंने कालेज से तीन मास की छुट्टी ली और लाहौर से बाहर अपने भाई के पास रहने लगे। परमात्मा की कृपा से उनके स्वास्थ्य में अच्छी उन्नति हुई और उन्होंने फिर छुट्टी से वापिस आकर अपना काम संभाल लिया जिसको वे इस समय तक कर रहे हैं। सन् ८९ ई० में ला० साईं दास के मरने पर लाहौर आर्य्यसमाज के सभासदों ने ला० हंसराज को अपना प्रधान बनाया और उस वर्ष आर्य्य प्रति-निधि सभा ने भी उनको अपना प्रधान चुन लिया। उसके कुछ समय पीछे आर्य्यसमाज में फूट पड़ी और दूसरी पार्टी के लोगों ने ला० हंसराज को बहुत बुरा भला कहना आरम्भ किया और अत्यन्त अपशब्दों से पुकारा। पर लाला जी कभी भी अपने पक्ष से झूठे होने का ख्याल अपने दिल में न लाए। हमारी समझ में तो इस निन्दा में जो गम्भीरता और दृढ़ता उन्होंने दिखलाई उससे उनका मान और भी बढ़ गया और लोगों को निश्चय होगया कि इस व्यक्ति में महान् पुरुष होने के सारेही चिन्ह विद्यमान हैं।

ला० हंसराज जी कालेज में इतिहास और पोलीटीकल इकानोमी के प्रोफ़ेसर हैं और अपने विषय में सूबे भर में चुने हुए अध्यापक हैं। उनके विद्यार्थी सदा अच्छे दर्जे में पास होते रहे हैं। वे धर्मसम्बन्धी शिक्षा में भी हिस्सा लेते हैं और कालेज और बोर्डिङ्ग का सारा प्रबन्ध उनके अधि-कार में है। तिसपर भी सदा लाहौर समाज में और बाहिर के समाजों में धर्मप्रचार का काम करते हैं और समाज का प्रबन्ध करते हैं।

उनका निज का जीवन अत्यन्त पवित्र और सादा है। उनका धर्मभाव अत्यन्त दृढ़ है। ईश्वर-भक्ति और प्रेम की दृष्टि से वे भक्त कहलाने के अधिकारी हैं। संस्कृत भाषा के विद्वान् हैं। मनु-

स्मृति, उपनिषद्, सूत्र आदि में उन्हें अच्छा ज्ञान है। यजुर्वेद और ऋग्वेद को भी उन्होंने बहुत कुछ विचारा है। अनाथरक्षा में जो काम पञ्जाब के लोगों ने किया है उसमें उनके विचार, उनकी सम्मति और उनकी सहायता ने भी बहुत कुछ साहाय्य दिया है। उनके जीवन का निर्भर इस रीति पर है कि उनके बड़े भ्राता उनको खर्च के लिये पचास रुपया महीना देते हैं और उसमें ला० हंसराज जी अपना और अपने कुटुम्ब का निर्वाह करते हैं। उनके तीन चार सन्तान हैं और उनकी धर्मात्मा माता भी उनके साथ रहती है। लेने देने में इतने सख़्त हैं कि किसी मित्र की दी हुई सम्पत्ति भी स्वीकार नहीं करते। तिसपर सामाजिक चन्दों में सदा यथाशक्ति चन्दा देते हैं। यह भी बता देना अनुचित न होगा कि ला० हंसराज उन आर्य्य समाजियों में से नहीं हैं जो अपने आपको हिन्दु जाति से पृथक समझते हैं। हिन्दुमात्र की सेवा करना, उनमें विद्या का प्रचार करना, हिन्दु जाति का उद्धार करना और उसमें वैदिकधर्म का प्रचार करना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है और इसीसे वे महान पुरुष कहलाने के योग्य हैं।

गृहस्थ में रहते हुए यदि कोई पुरुष आज कल सन्यास को प्राप्त हुआ है, तो वे ला० हंसराज जी हैं। काम करते हुए अगर कोई पुरुष श्रीकृष्ण जी की शिक्षानुसार निष्काम अवस्था का पात्र बन रहा है तो वे ला० हंसराज हैं। देश में इस प्रकार के गृहस्थ वा संन्यासी यदि दस भी और हो जावें तो देश के सब दुख दरिद्र दूर हो जावें और शीघ्र ही भारतवासी उन्नत होकर जगत् की शिरोमणी जातियों में से बन जावें। परमात्मा इस जाति पर कृपा करें कि भारतमाताओं के उदर से इस प्रकार के पुत्र उत्पन्न हों।

लाजपति राय

अङ्गरेजी भाषा की उन्नति का संक्षिप्त इतिहास

उपोद्घात:—अङ्गरेज़ी शासन और विद्या की कृपा से अब बहुत से शिक्षित पुरुषों के चित्तों में देशानुराग उत्पन्न हो चला है। अब वे अपने समय का कुछ अंश देश की दीन दशा और उसके उद्धार के विचारों में भी व्यतीत करते हैं; कुछ महानुभाव तो ऐसे हैं जिन्होंने अपना जीवन ही इस महापुण्य के निमित्त समर्पण कर दिया है; और अपने समय का विशेषांश इन्हीं विचारों अथवा तत्सम्बन्धीय कार्यों में लगाते हैं। क्या हमारे देश के लिये यह एक ऐसी बात नहीं, कि जिसके निमित्त अंग्रेज़ी राज्य को जितना धन्यवाद दें उतना ही थोड़ा है? किञ्चित् 'बादशाही' समय पर तो ध्यान दीजिए। उस समय की 'नई रोशनी' वाले, अर्थात् मुसलमानी शिक्षा पाए, बहुतेरे धनी या उच्चपदाधिकारी महाशयों का समय विशेषत: बटेरों, वेश्याओं, भांड़ों, तमाशों में, अथवा खुशामद या किसी छलप्रपंच से धन प्राप्ति करने के विचारों में नष्ट होता था। आधुनिक राजाओं या इलाक़ेदारों के यहां चले जाइए, और अब भी किसी किसी के यहां बादशाही का छोटा सा उदाहरण देख लीजिए। छल कपट से दूसरों का अधिकार छीनलेना और शत्रुओं के बालबच्चों तक को हताहत करने के प्रवन्ध सोचना, या प्रेम की भद्दी 'ग़ज़लें' लिखना, उत्तमोत्तम कार्यों में गिने जाते थे। स्वदेश क्या है, उत्साह किसे कहते हैं और देशोन्नति किस चिड़िया का नाम है, ऐसे विचार उन्हें स्वप्न में भी न आते थे।

अस्तु, देशोन्नति तो इधर उधर दृष्टिगोचर होने लगी है; परन्तु इसके विचारों में बड़ा भेद है। किसीकी बुद्धि में देशोन्नति का एक मात्र उपाय अङ्गरेज़ी वस्त्र, अङ्गरेजी आचार व्यवहार, अङ्गरेज़ी धर्म और अङ्गरेज़ी भाषा का (देशीय भाषा की रीति पर) ग्रहण करना ही है। ये लोग 'हिन्दु-

स्तान' को काला 'इङ्गलिस्तान' बनावेंगे; परन्तु यह नितान्त असम्भव है। इस पक्ष के सर्वथा विरोधी-विचार वाले वे लोग हैं जो समझते हैं कि अङ्गरेजी विद्या और शासन से इस देश को लाभ नहीं, किन्तु हानि ही पहुंची है। इनके मत के अनुसार हम लोगों का कल्याण संस्कृत पढ़ने, पूजा पाठ बढ़ाने, गौ ब्राह्मण के मानने, जाति भेद और अधिक दृढ़ करने इत्यादि सब पुराणोक्त रीतियों और आधारों के ग्रहण करने ही में है। अङ्गरेज़ी तो पढ़नी ही न चाहिए और यदि पढ़ें भी तो केवल उदरपालनार्थ और विशेष लाभ उससे कुछ न उठाया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पन्थवालों की बहुत अधिकता है। प्रायः सभी अशीक्षित पुरुष और स्त्री जन और इस देश के अभाग्य वश, बहुत से शीक्षित महाशय भी इस पन्थ के अनुगामी है। जिस पक्ष के सहायकों की सेना में सभी मूर्ख अपढ़ लोगों की गणना है वह कहां तक माननीय है, इसका निर्णय हमारे पाठकों को स्वयं करलेना चाहिए।

उपर्युक्त दो बिपरीत मतों के मध्यस्थ एक मत और है, जिसके अनुसार देशोन्नति के लिये आवश्यक है कि हम लोग अपनी बुद्धि को भिन्न भिन्न विद्याओं से, देशाटन से, परस्पर विचार प्रकट करने से, तथा समाचार पत्रादि अवलोकन से तीव्र करें, और तब प्रत्येक विषयों के दोषों और गुणों पर यथाशक्ति विचार करके निश्चित सिद्धान्तों पर चलें। तात्पर्य्य यह कि बुद्धि से पूर्णतया काम लें। यही अपूर्व शक्ति मनुष्यत्व का मुख्य अवलम्बन है, इसके बिना हमलोगों में और पशुओं में रूप ही का अन्तर है।

हमलोगों का कर्तव्य न तो यही है कि बिना विचार किए अङ्गरेजों के गुण दोष सभी को आदर दें, और न यही कि जितनी बातें पुरानी हैं सभी माननीय हैं; तर्कना की कुछ आवश्यकता नहीं।

जहां तक मालूम है उच्चशिक्षा पाए हुए विचारवान् महानुभावों में से विशेषतः इसी मध्यस्थ मार्ग को ठीक समझते हैं। इतिहासों के देखने से भी विदित होता है कि उन्नति सदा इसी मार्ग का आश्रय लेने से हुई है।

देशोन्नति के विषय में इतिहासों से बहुत कुछ लाभकारी शिक्षा मिल सकती है, तथा इस देश की प्रत्येक बातों के गुण दोषों पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु इस लेख में संक्षेप रीति पर हम केवल यह दिखलाना चाहते हैं कि मातृभाषा की उन्नति और देशोन्नति में अति घना सम्बन्ध है। इस निमित्त हम इंग्लेंड को उदाहरण की रीति पर लेंगे। मातृभाषा और उन्नति का घनिष्ट होना इससे भली प्रकार स्पष्ट हो जायगा।

उन्नति किसे कहते हैं? इंग्लैण्ड के ऐतिहासिक विषयों का लोगों को केवल उसी समय से कुछ ज्ञान है जबसे रोम के प्रसिद्ध शासक जूलियस सीज़र ने उसपर चढ़ाई की। इस बात को दो हज़ार वर्ष के निकट हुए, क्योंकि यह चढ़ाई सन् ५५ पू० ई० में हुई थी। उस समय इंग्लैण्ड बृटेन और वहां के निवासी बृटन के नामों से प्रसिद्ध थे।

इन बृटनलोगों को कृषिविद्या का कुछ भी ज्ञान न था। फ़्रांसदेश के सामने के समुद्रतट पर कुछ थोड़ी सी बहुत अस्तव्यस्त बुरी प्रकार जोती हुई ज़मीन के सिवाय प्रायः सभी देश बनों और दलदलों से भरा था। खेती, सभ्यता का पहिला चिन्ह है। उसकी जब यह दशा, तो सभ्यता की तथा और बातों की क्या आशा!! लोग खाल, बाल या वृक्षों की छाल से कुछ अपने अङ्ग ढक लेते थे और जो अङ्ग, हाथ पिण्डली इत्यादि, खुले रहते थे, उन पर नीला गोदना झलकता था। गोदने से देह को अशोभित करने की प्रथा असभ्यता का एक मुख्य लक्षण समझा जाता था। इनके धर्म की अधमता इसीसे प्रमाणित है कि अपने देवताओं को सन्तुष्ट रखने के लिये ये नरबलि दिया करते थे। बहुत कहने से क्या, इस समय ये सर्वथा असभ्य थे।

फ़्रांस के निकटवर्त्ती स्थानों के निवासी बृटन लोगों की अपेक्षा विशेष सभ्य थे। ये लोग खेती

करना कुछ कुछ जानते थे, ऊन के बस्त्र पहिनते थे और सोने चांदी के आभूषणों का भी प्रयोग करते थे। यह दो हज़ार वर्ष पूर्व की दशा देखो और आज कल अंग्रेज़ों का प्रभाव, उनके गुण, खाना पीना, पहिनाव ओढ़ाव, रहन सहन, विद्यानुराग इत्यादि देखिए। इससे यह भली प्रकार विदित होजायगा कि 'उन्नति' किसे कहते हैं।

इंग्लैण्ड रोमियों के आधीन—सीज़र की चढ़ाई के बाद शनैः शनैः रोमियों ने अपना पूरा अधिकार बृटेन पर जमा लिया और ५०० वर्ष के निकट (५५ पू० ई० से ४१० स० ई० तक) उन्होंने यहां राज्य किया। ४१० स० ई० में जब रोमियों को बड़ी बड़ी आपत्तियों ने आ घेरा तब रोम के सम्राट ने अपनी सब रोमी सेना और शासकों को बृटेन से बुला लिया।

अपने शासनकाल में रोमियों ने सड़कों और सिक्कों द्वारा वाणिज्य का प्रचार किया और नगर बसाए, जिससे बहुत लोग परस्पर मिलने और एकत्रित होने लगे। इस प्रकार सभ्यता के फैलने में सुगमता हुई। इन्होंने बृटनों को कृषिविद्या और कई और भी गुण सिखाए। जिस समय इन्होंने बृटेन देश को छोड़ा, वहां से नाज, चूना, पनीर, मोती, टीन इत्यादि पदार्थ वाणिज्य के निमित्त अन्य देशों को जाते थे।

उपर्युक्त बातों से यह विदित है कि रोमियों ने कुछ देशोन्नति की। परन्तु वहां के असली निवासी बृटनों के लिये यह कुछ विशेष लाभदायक न हुई। एक अंग्रेज़ इतिहासलेखक लिखता है कि "सब नगर विदेशी विजयी जनों या उनकी सन्तति ही से बसे थे और समस्त देश में उन धनी रोमी बड़े बड़े भूस्वामियों की कोठियां छा रही थीं, जो या तो स्वयम् सपरिवार रोम से पधारे थे या जिनके पूर्वजों ने आकर यहां ही निवास करना पसन्द किया था। प्रायः सभी नीच काम देशवासियों से कराए जाते थे और सब अधिकार और धन विदेशियों के हाथ में थे"। किसी देशवासी ने यदा कदा अगर रोमी शिक्षा पाई तो वह बोली, रहन सहन, बस्त्र में उन्हीं में मिल जाता था।

क्या यही दशा हमारे देश की नहीं है। प्रत्येक नगर के निकट कितनी सुन्दर सुन्दर कोठियां, पुष्पवाटिकाओं से सुशोभित, परदों से मढ़ी, पंखा चलती हुई झलकती हैं? वे विजयी अंग्रेज़ों की हैं। उदार अंग्रेज़ों ने हमको शिक्षा से वञ्चित नहीं रक्खा जैसा कि रोमियों ने बृटनों के साथ किया था, और न हम बृटनों की नाईं बुद्धहीन और असभ्य ही हैं। अंग्रेज़ों ने तो हमारे लिये स्कूल और कालिज बनाए हैं, और शिक्षितों को उनकी योग्यता के अनुसार वे अधिकार और सम्मान भी देते हैं। ऐसी दशा में हमारी यदि उन्नति न हो, तो परमात्मा हमी को दोषी ठहरावेगा; अंग्रेज़ों को कदापि नहीं!

बृटन लोगों का सैक्सनों को बुलाना।—जब रोमियों ने चढ़ाई की थी, बृटन लोगों ने बड़ी वीरता और साहस से उनका मुकाबिला किया था। परन्तु ३, ४ सैा वर्ष की पराधीनता ने उनकी वीरता नष्ट कर दी। कारण यह हुआ कि रोमी लोगों के शासनकाल में आपस का लड़ाई दंगा बहुत कुछ बंद रहा और देश की शत्रुओं से रक्षा विशेषतः रोमी सिपाहियों द्वारा की जाती थी। जब युद्ध का काम न रहा तो वीरता क्यों न नष्ट हो जाय। बस, रोमियों के जाते ही उनकी असहाय और युद्धशक्तिहीन प्रजा पर उत्तर और पश्चिम से आक्रमण आरम्भ हुए। यह हमला करनेवाले लोग इन्हीं बृटनों के भाईबन्द थे। नक़शे के देखने से मालूम होगा कि इंग्लैंड के उत्तर में स्काट्लैंड और पश्चिम में वेल्स दोनो पहाड़ी देश हैं। रोमियों की चढ़ाई के समय बहुत से बृटन लोग भाग कर इन्हीं पहाड़ी देशों में जा बसे थे; वहां रोमियों की कुछ चलाई न चलती थी। बहुधा ये लोग पहाड़ी से उतर कर रोमी प्रजा पर दैाड़ पड़ते थे। इनके रोकने के लिये रोमियों ने उत्तर में एक बड़ी भारी

...गार बनाई थी ग्रैार सीमाओं पर, रक्षा के लिये, ...रोमी सेना भी रक्खी जाती थी। सीमारक्षक सेनाओं के हटते ही यह पहाडी बृटन अपने सभ्य भाई बन्दों का लूटने पाटने लगे। ये लोग बड़े ही निर्दय थे। केवल माल ही लूटने से संताेष न करते थे, किन्तु बालकों ग्रैार स्त्रियों तक को बड़ी निर्दयता से मार डालते थे। जो सम्पत्ति लेजा सकते थे वह लेजाते थे; शेष घरों समेत जलाकर नष्ट कर देते थे। सहस्रों गांव ग्रैार नगर इसी प्रकार मिट्टी में मिल गए। रोमियों की सभी सभ्यतासूचक इमारतें जड़ से ग़ायब हो गईं। कुल देश राख ग्रैार अधजली इमारतों से पूर्ण दीखने लगा। असमर्थ बृटनों को जब कोई उपाय न सूझ पड़ा, ग्रैार रोम के महाराज इनकी पुकार पर कुछ सहायता न भेज सके, तब इन्होंने जर्मनीनिवासियों से सहायता मांगी।

सैक्सन लोग।—इस समय जर्मनी देश भी प्रायः जंगलों से भरा था ग्रैार वहां के निवासी निपट असभ्य जंगली थे। परन्तु ये लोग समुद्र पर नाव ग्रैार जहाज़ चलाना भली प्रकार जानते थे ग्रैार इसी लिये 'समुद्र के राजा' कहे जाते थे। बृटनों की प्रार्थना पर इनमें से कुछ लोग अपने सर्दार हिञ्जिस्ट ग्रैार हार्सा समेत इंग्लैंड में आए (४४९ सन ई०)। इन्होंने पहाडी बृटनों को तो भगा दिया, परन्तु इंग्लैंड उन्हें ऐसा सुहावना जान पड़ा, कि स्वयं लौट जाने की कौन कहे, देश की प्रशंसा करके इन्होंने अपने कुछ ग्रैार भाइयों को जर्मनी से बुला भेजा। फिर क्या था कोई सवा सौ वर्ष तक टिड्डीदल के समान इन जर्मन लोगों के समूह के समूह इंग्लैंड में आकर बसते रहे। इनसे ग्रैार बृटन लोगों से घोर संग्राम हुए। परिणाम यह हुआ कि बिचारे बृटन लोग विशेषतः तो मारडाले गए, कुछ पहाड़ियों में अपने भाइयों से जा मिले, ग्रैार शेष ने विजयी जर्मनों का दासत्व स्वीकार किया।

जर्मन लोगों के तीन मुख्य दल थे—ऐंगिल, सैक्सन ग्रैार जूट। इन्होंने कुल इंग्लैंड में सात राज्य स्थापित कीं। जब बृटनों को इन्होंने हर तरह मिटा दिया, तब इन राज्यों में परस्पर युद्ध आरम्भ हुआ ग्रैार ढाई सौ वर्ष की लड़ाई के बाद कुल इंग्लैंड ८२७ सन ई० में राजा एग्बर्ट के अधिकार में हो गया। इसी समय से यह देश इंग्लैन्ड या ऐंगिल लोगों का देश कहलाया, क्योंकि अन्त में ऐंगिल दल की जय रही। इनकी भाषा ऐंग्लो-सैक्सन कहलाती है। इग्बर्ट का स्थापित किया हुआ राज्य १९० वर्ष रहा (८२७ से १०१७)। १०१७ में डेन लोगों ने अन्तिम सैक्सन राजा, एड्मन्ड को हरा कर देश को अपने अधिकार में किया। डेनों का हाल आगे दिया जायगा।

अब देखना चाहिए कि सैक्सन लोगों ने अपने ५०० वर्ष के राज्यत्वकाल में (४४९–१०१७) सभ्यता कहां तक बढ़ाई ग्रैार कहां तक देशोन्नति की। एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि इन लोगों ने बृटनों का तो इतना सर्वनाश किया कि यह कहना अयोग्य न होगा कि अब इंग्लैन्ड नए सिरे से बसा। इस ५०० वर्ष के ऐंग्लो-सैक्सनों के राज्यकाल का विशेषांश लड़ाई ही में व्यतीत हुआ ग्रैार देश में शान्ति के बिना उन्नति होना अति कठिन होता है। इंग्लैन्ड के ये नए निवासी ऐंग्लो-सैक्सन जिस समय अपने देश जर्मनी से आए, निपट मूर्ख ग्रैार असभ्य थे। उनके मकान लकड़ी के बनते थे, ग्रैार कितने खराब थे, यह इस बात से जाना जा सकता है कि महाराज अलफ्रेड को, पढ़ते समय रोशनी को मकान की दरारों से आती हुई हवा से बचाने के लिये एक विशेष प्रकार का लैम्प ईजाद करना पड़ा। जहां के राज-भवन की यह दशा थी, वहां गरीबों की झोपड़ी के विषय में क्या कहा जाय। मकान बहुत नीचे, छोटे, सर्दी से सब अकड़ जाने के कारण ओर से बन्द होते थे। रोशनी ग्रैार हवा के लिये केवल कुछ छिद्र बने रहते थे। इन घरों के अन्दर फरनिचर (आराम ग्रैार अलंकार के निमित्त सामान, जैसे कुर्सी, मेज़, चारपाई,

तस्वीर, अलमारी, इत्यादि) का तो नाम न था। सभी लोग विशेषतः पुआल पर सोते थे और रात में लैम्प न होने के कारण दिन ही में भोजन कर लेते थे। गरीब आदमियों की झोपड़ियों में उनके जानवर, सूअर बकरी इत्यादि, भी जहां आदमी रहते थे वहीं रहते थे। ये लोग विशेष कर सूअर का मांस, मोटी रोटियां और मछली खाते थे; खाने के बाद मद्यपान खूब करते थे; और जहां खाते वहीं बेहोश होकर सो रहते थे। बहुत कहने से क्या, बड़े ही लोचड़ थे। उनकी दशा वर्णन करते घृणा होती है। यह उस समय की दशा हुई जब ये ऐंग्लो-सैक्सन पहिले पहल इंग्लैन्ड में पधारे थे। इसके पीछे उन्होंने कुछ उन्नति की। सभ्यता का सबसे मुख्य सहायक इस समय में ईसाई मत हुआ। रोमियों ने भी अपने राज्यकाल में इसका कुछ प्रचार किया था। परन्तु उनके देश छोड़ने पर परस्पर जो महाभारत हुआ, उसमें सब इसके चिन्ह मिट गए। ऐंग्लो-सैक्सन लोग ईसाई न थे। सन ई० ५९६ से फिर इस मत की चर्चा शुरू हुई और थोड़े ही दिनों में सैक्सन राजा लोग तक इसके अनुयायी होगए। सभ्यता को कई प्रकार इससे सहायता पहुंची।

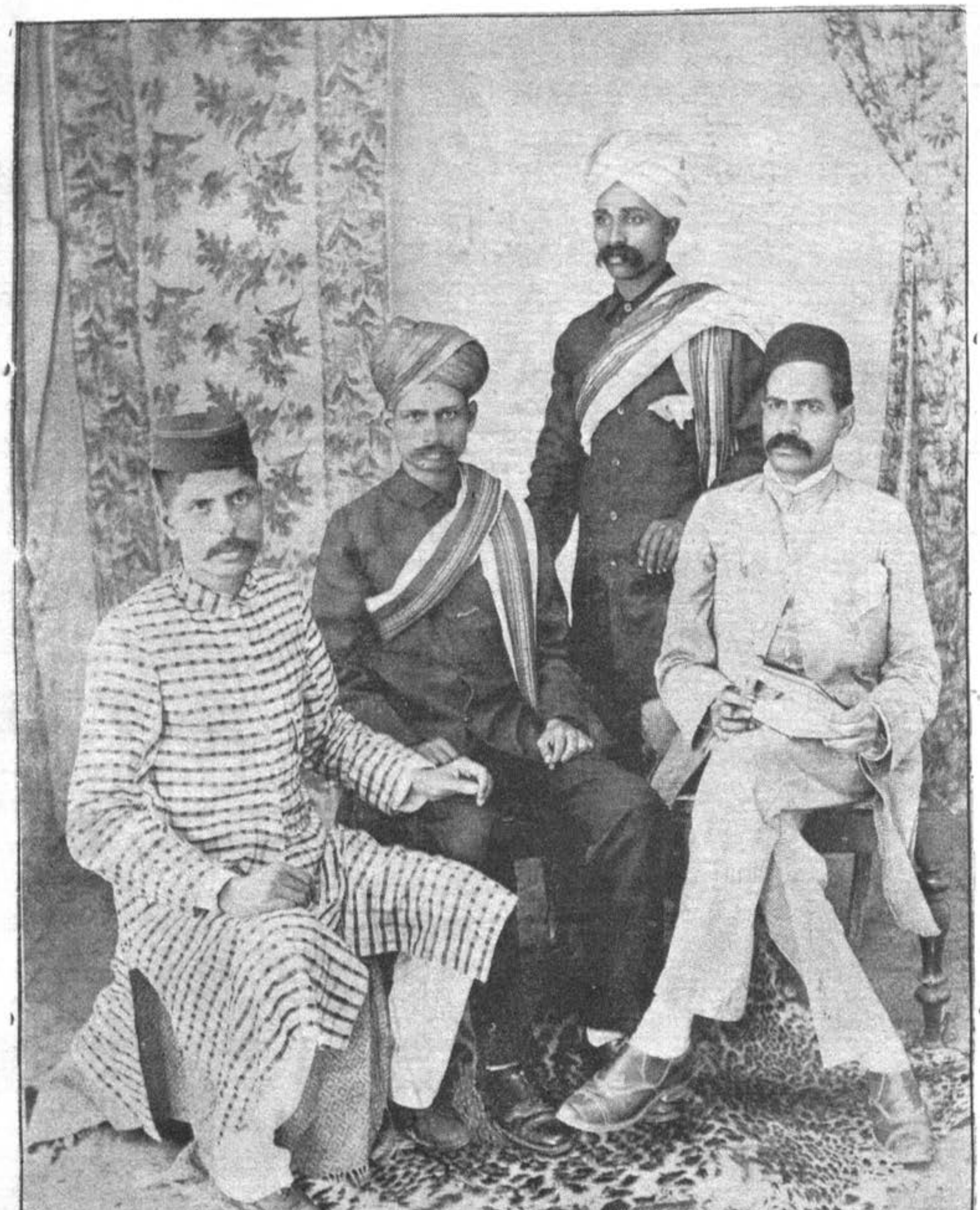
इस मत के पुजारी बहुधा रोमी होते थे और उस समय रोमी सबसे अधिक सभ्य थे। इन पुजारियों ने आकर स्कूल खोले और ऐंग्लो-सैक्सन को रोमी अक्षरों में उनकी भाषा का लिखना बताया। बहुत सी धर्मसम्बन्धी पुस्तकों का भषानुवाद करके ऐंग्लो-सैक्सन ज़ुबान की उन्होंने जड़ डाली। जिन लफ़्ज़ों की कमी थी उनको सीधे लैटिन से लेकर भाषा में मिलाया और इस प्रकार उसका कोष बढ़ाया और उसकी पुष्टता की।

ईसाई पुजारियों ने कृषिकार्य्य को उत्तम रीति से करना सिखाया। वे स्वयं इस कार्य को करते थे और दूसरे को सिखाते भी थे। असभ्य ऐंग्लो-सैक्सनों के लिये ये पुजारी ही स्कूल मास्टर, डाक्टर, इनजिनियर, पुस्तक लेखक और पीछे जज, राज्यमन्त्री इत्यादि सभी का काम करते थे।

यह सभी समझ सकते हैं कि विद्या और धर्म की उन्नति सर्वथा शांति पर निर्भर है। ईसाई मत युद्ध का विरोधी है। इसलिये इसके पुजारी अक्सर शांति रखने की चेष्टा करते रहे और इस प्रकार देश को बहुत लाभ हुआ। सैक्सन राज्यकाल के अन्तिम भाग में अमीरों के मकान ईंट मिट्टी के बनने लगे। खाने में रोटी का इस्तेमाल बढ़ा, कपड़ा कुछ महीन पहिना जाने लगा, अमीर लोगों के यहां लकड़ी के अस्त व्यस्त गढ़े हुए कुन्दे स्टूल बेंच और चारपाई का काम देने लगे और विद्या की कुछ चर्चा हुई। यहां पर इनकी विद्या सम्बन्धी दशा पर कुछ ज्यादा ध्यान देना चाहिए, क्योंकि विद्या ही उन्नति का आधार है। उच्चशिक्षा सब लैटिन ही में होती थी, जैसी कि अब तक इंग्लैन्ड में प्रगट है।

राजा अलफ्रेड (८७१-९०१) सैक्सन राजाओं में बहुत ही प्रसिद्ध और प्रजाप्रिय हुए हैं। ये प्रजा के बड़े शुभचिन्तक और देश के सच्चे हिताभिलाषी थे। इन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को स्थापित किया जो इस समय तक केवल इंग्लैंड के— नहीं समस्त संसार के—प्रसिद्ध विद्यास्थानों में से एक है। डेनों को लड़ाई में परास्त करके राज्यगद्दी पर निश्चिन्त होकर बैठने के बाद इन्होंने बड़ी मेहनत से लैटिन भाषा पढ़ी और स्वयं बहुत सी पुस्तकों का मातृभाषा में अनुवाद किया। इस उदाहरण का बड़ा प्रभाव हुआ। राजा के देखा देखी ऐंग्लोसैक्सन में पुस्तकें लिखी जाने लगीं और लैटिन से उसमें तर्जुमा होने लगा। लैटिन की उच्चशिक्षा तो जिसे अवकाश और धन होता उसीको नसीब हो सकती थी। इस प्रकार मातृभाषा की उन्नति से मेहनत करनेवाले गरीब लोगों को (जिनकी संख्या हर देश और हर काल में अमीरों से कहीं ज्यादा रही है) भी शिक्षा देना मुमकिन होगया। [शेष आगे।

गिरिजादत्त बाजपेयी, एम० ए०।



बाबू माधवप्रसाद   पं० माधवराव सप्रे   पं० रामराव चिंचोलकर   पं० विश्वनाथ शर्म्मा

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३] मई और जून १९०२ ई० [संख्या ५ और ६

विविध वार्ता

आज हमको इस बात के प्रकाशित करते विशेष आनन्द होता है कि ग्वालियर नरेश श्रीमान सेन्धिया ने अपने राज्य में आज्ञा दे दी है कि संवत् १९६० के प्रारम्भ से उनकी कचहरियों में नागरी अक्षरों ही में केवल काम हो। श्रीमान की आज्ञा को हम नीचे अविकल उद्धृत करते हैं।

साक्यूलर आम न० १८

मुवर्रखे २२ अप्रैल सन् १९०२ ई०

बजरिये महकमे सेक्रेटरियट हुज़ूर दर्बार जुडिशयल डिपार्टमैंट दर्बारे इजराय कार्रवाई ब ख़त हिन्दी

जो कि शुरू संवत् १९६० से जमीय अदालत हाय जुडीशियल महकमेजात पुलिस व मुक़द्दमात माल में कार्रवाई ब ख़त हिन्दी (देवनागरी) बतरमीम दफ़ा २८५ कानून आम जारी होगी।

लिहाज़ा हिदायत हस्ब ज़ैल जारी की जाती है—

(१) जमीय अहलकारान जुडीशियल व पुलिस व माल को मियाद सदर तक ख़त हिन्दी लिखने का महावरा हासिल करना चाहिए।

(२) हिन्दी साफ़ व ख़ुशख़त अल्फाज़ अलहदा अलहदा लिखना चाहिए।

(३) आइन्दा जो अहलकार भरती किए जावें वह जहाँ तक मुमकिन हो हिन्दीदां भरती किए जांय।

(४) रजिस्टर व नक़शेजात वग़ैरा जो छपते हैं संवत् १९६० से हिन्दी में छपकर इस्तेमाल में आने का इन्तज़ाम हरसिह सीग़े जात मुन्दर्जे बाला को करना चाहिए।

(५) जो काग़ज़ात रज़ीडण्टी से ब ख़त फ़ार्सी आए वह उसी रजिस्टर हिन्दी में दर्ज किए जांयगे।

ले० क० सर मैकिल फीलोग

चीफ़ सेक्रेटरी

हुज़ूर दर्बार

श्रीमान की इस उचित आज्ञा से हमारा विश्वास है कि प्रजा का उपकार और विद्या का प्रचार अवश्य होगा। यद्यपि यह कुछ काल से सुनने में आता था कि ग्वालियर में देशहितैषी लोगों की यह आन्तरिक इच्छा है कि नागरी अक्षरों का प्रचार हो और यद्यपि श्रीमान स्वयं ऐसा करने का विचार कर रहे थे, परन्तु हमें यह देख कर बड़ा सन्तोष और आनन्द हुआ कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा का डेपुटेशन जो उन दिनों में ग्वालियर में था, इस शुभ सम्वाद को लाया। हमारा विश्वास है कि डेपुटेशन के ग्वालियर में जाने और वहां नागरी की चर्चा होने से श्रीमान सेन्धिया नरेश ने उत्साहित हो इस आज्ञा को प्रचारित किया। जो कुछ हो हम श्रीमान को हृदय से इस आज्ञा के लिये धन्यवाद देते हैं और साथही प्रजा के हितसाधन की ओर ध्यान देने के लिये बधाई देते हैं। हमारी प्रार्थना है कि जयपुर और बीकानेर नरेश भी इस कार्य की ओर अपनी कृपादृष्टि करें और अपने अपने राज्य में नागरी का प्रचार कर देश और प्रजावर्ग के धन्यवाद-भाजन बनें।

*
* *

हम गत किसी संख्या में काशी नागरीप्रचारिणी सभा के डिपुटेशन के विषय में लिख चुके हैं। इसमें चार महाशय सम्मिलित थे जिनके नाम ये हैं—(१) पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, ट्यूटर टू दी चीफ़ आफ़ पेंडरा, बिलासपुर, तथा सम्पादक, छत्तीसगढ़ मित्र; (२) पण्डित रामराव चिञ्चोलकर, बी० ए०, दीवान पिडरिया स्टेट, बिलासपुर; (३) पण्डित विश्वनाथ शर्म्मा, मथुरा, और (४) बाबू माधवप्रसाद, सभा के सहायक मन्त्री। ये चारो महाशय १५ फरवरी को काशी से यात्रा के लिये गए और अप्रैल के अन्त में यात्रा कर लौट आए। इन महाशयों का विचार अभी और भी अधिक काल तक कार्य करने का था, पर ग्रीष्म की उष्णता के कारण इस वर्ष कार्य बन्द करना पड़ा।

हमारे पाठक यह बात जानकर आनन्दित होंगे कि अब तक सभा के स्थायी कोष में १४०००) के ऊपर चन्दा हो चुका है और डेपुटेशन में चन्दा एकत्रित करने के अतिरिक्त और जो कुछ कार्य किया, उसे कुछ तो विचारवान् पुरुष स्वयं जान सकते हैं और कुछ वे आगे चल कर जानेंगे, जब इन महाशयों के लगाए हुए वृक्ष में फल आरोपित होंगे और हिन्दी के प्रेमियों को उन्हें आनन्द से चखने का अवसर प्राप्त होगा। हमारे एतद्देशीय लोगों को लज्जित होना चाहिए कि उनकी मातृभाषा हिन्दी के लिये बिलासपुर ऐसे दूर स्थान से दो महाराष्ट्र विद्वान ब्राह्मणों ने कष्ट उठा कर इस प्रकार निस्वार्थ भाव से यात्रा की। आजकल भारतवर्ष में बातों का डंका पीटनेवाले और अपने स्वार्थ की लपेट देश हित की झूठी चिल्लाहट मचाने वाले बहुत दिखाई देते हैं। इन बिचारों की सारी कलई तो उस समय खुल जाती है जब उनके स्वार्थ में, उनके रोटी मांडे अथवा मोहनभोग में, किसी प्रकार से बाधा पड़ने की आशंका दिखाई पड़ने लगती है। ऐसी शोचनीय अवस्था में यदि हमें निस्वार्थी लोग दत्तचित होकर देश की सेवा करते देख पड़ते हैं, तो हमारे आनन्द की सीमा नहीं रहती। डेपुटेशन के चारों सभ्यों ने जो यह नागरी की सेवा का दूसरों के लिये आदर्श खड़ा कर दिया, उसके लिये हम उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। इन महानुभावों के सम्मानार्थ नागरीप्रचारिणी सभा ने सभासदों का एक उत्सव ता० २ मई को काशी में किया था, जिसमें किंचित जलपान, परस्पर मिलन, और वक्तृताएं हुई थीं; तथा आनन्द मनाया गया था। इस उत्सव में बाबू राधाकृष्ण दास ने निम्नलिखित छप्पय पढ़ा था, जिसे हम उस अवसर के स्मरणार्थ यहां प्रकाशित करते हैं।

श्री राम राव, माधव उभय
विश्वनाथ कीरति अयन
निज भाषाहित निरत होइ तजि गृहकारज छति
देस देस पर्यटन कियो सहिकै कलेस अति

अति सुदच्छता सहित सभा-उद्देश्य प्रचार्यो
पाल्यो निज कर्तव्य नागरी काज सुधार्यो
अति हरखित चित हम सबन को
धन्यवाद कीजै ग्रहन ॥

हमें विश्वास है कि इन महानुभावों का दृष्टान्त आदर्श स्वरुप माना जायगा और आगामी वर्ष एतद्देशीय अनेक महाशय सभा का कार्य करने को उद्यत हो जांयगे। हम अपने पाठकों के विनादोर्थ इन महाशयों का एक चित्र प्रकाशित करते हैं। देखिए सम्मुख जो महाराष्ट्र मूर्ति खड़ी है, वह पण्डित रामराव जी चिंचोलकर हैं। उनके दहिने ओर पण्डित माधवराव जी सप्रे बैठे हैं, और उनके बाएं ओर पण्डित विश्वानाथ जी शर्म्मा हैं। पण्डित माधव राव जी के दहिने ओर उन्हींके नामरासी बाबू माध्वप्रसाद जी हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इन महाशयों को चिरजीवी करे और उनकी बुद्धि सदा देशहित के कार्य्यों की ओर लगाए रक्खे।

* * *

सन् १९०१ की मनुष्यगणना का परिणाम अब छपने लगा है। धर्म विभाग से भारतवासियों की संख्या इस प्रकार है—

हिन्दू २०७१४६४२२ पुरुष १०५१८८४४५
स्त्री १०११९५९७७

हिन्दुओं में आर्यसमाजी, सनातन धर्म्मी और ब्राह्म इस प्रकार हैं—

सनातन धर्म्मी २०७०७५२७७ पुरुष १०५१४८८७३
स्त्री १०१९२६३८४

आर्यसमाजी ६७१०५ पुरुष ३७२०९
स्त्री २९८९६

ब्राह्म ४०४० ; पुरुष २३०३ ; स्त्री १६९७

सिक्ख २१९५२६८ पुरुष १२४३९८८
स्त्री ९५१२८०

जैनी १३३४१४८ पुरुष ६९१८६७
स्त्री ६४१२८१

बौद्ध ९४७६७५० पुरुष ४९८०३८८
स्त्री ४६९६२६२

ज़ोरास्ट्रियन (पारसी) ९४१९०
पुरुष ४८२०६
स्त्री ४५९८४

मुसलमान ६२४५८०६१ पुरुष ३२२५७५९६
स्त्री ३०३००४६५

ईसाई २९२३२४१ पुरुष २५११७९७
स्त्री १४११५४४

यहूदी १८२२८ पुरुष ९२४७
स्त्री ८९८१

प्रेत पूजक ८५८४३४९ पुरुष ४२५८६०३
स्त्री ४३२५७४६

इनके अतिरिक्त जिनकी जाति ज्ञात नहीं हुई वे २१८६ हैं, जिनमें १५७७ पुरुष और ११०९ स्त्रियां हैं। ईसाइयों की संख्या बहुत बढ़ी देखकर मिस्टर रिज़ले इस बात का पता लगाया चाहते हैं कि किन किन कारणों से ऐसी अवस्था हुई है। मिस्टर रिज़ले को इसके लिये अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि काल न पड़ता और हमारी ईसाई गवर्मेंट की सहायता न रहती तो हमारे ईसाई भाइयों को पेट के मारे मातृपितृविहीन बालकों को पा अपनी विजय का इतना अधिक आनन्द मनाने का अवसर न प्राप्त होता। पेट के लिये किसी कर्म का कर बैठना भौतिक विषयों से संबन्ध रखता है और किसी धर्म को छोड़ना वा दूसरे को स्वीकार करना आत्मिक विषय है। परन्तु हमारे कृस्तानी धर्मप्रचारक पादरियों ने अपने स्वार्थ में पड़कर दोनों को एक कर डाला है और इस प्रकार प्राकृतिक नियमों से अपना विरोध प्रगट किया है। परन्तु यह निश्चय है कि यह विरोध इतना प्रबल कभी नहीं हो सकता कि वह कृतकार्य होजाय। आत्मा में बल और ज्ञान के उत्पन्न होते ही पेट की ज्वाला उस प्रवाह को रोकने में असमर्थ होगी। परन्तु उस सिद्धान्त को कालदेवता ही सिद्ध कर सकते हैं। हमारे देशभाइयों में तो काल-देवता को सहायता देने का न तो उत्साह ही है और न सामर्थ्य।

बाबू गोपालचन्द्र

उपनाम

गिरिधर दास

परमेश्वर नास्तिकों का मुंह बन्द करने और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने ही के लिये कभी कभी पृथ्वी पर ऐसे लोगों को जन्माता है जिनकी अद्भुत प्रतिभा देखकर लोग आश्चर्य में आजाते हैं। हमारे चरित्रनायक भी वैसेही एक पुरुषरत्न थे कि जिनके चरित्र में ईश्वर की ईश्वरता का साक्षात प्रमाण मिलता है। ऐसे लोगों के जीवनचरित्र के पढ़ने से लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि उनका चरित्र लोगों को एक अच्छा रास्ता दिखलाता और संसार में यश कमाने का अच्छा उपदेश देता है।

जगत्प्रसिद्ध कविश्रेष्ठ गिरिधर दास, प्रसिद्ध नाम बाबू गोपालचन्द्र, का जन्म काशी में मिती पौष कृष्ण १५ सं० १८९० को हुआ था और मृत्यु मिती वैशाख सु० ७ सं० १९१७ को। उन्होंने इस २६ वर्ष ४ महीने और ७ दिन की ऐसी छोटी अवस्था में कितने बड़े काम किए हैं यह देख कर आश्चर्य होता है। हिन्दुस्तान में जिस अवस्था में धनवानों के लड़कों को पूरी तरह पर बात करने का भी ज्ञान नहीं होता और जिस भयानक अवस्था के वर्णन में उचित रूप से कहा गाय है कि—

"यौवनं धन सम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

उस अवस्था में इस प्रान्त के प्रसिद्ध सेठ हर्षचन्द्र के एकमात्र पुत्र गोपालचन्द्र ने बचपन में ही पितृहीन होकर भी विद्वत्ता और सच्चरित्रता का ऐसा उदाहरण छोड़ा है कि जिसे देखकर ईश्वर की महिमा स्मरण आती है। इसके पहिले कि हम इनका कुछ चरित्र लिखें, इनके सुप्रसिद्ध वंश का बहुत ही संक्षेप से वर्णन कर देना उचित समझते हैं, जिसमें हमारे पाठकों को इनका और इनके पुत्र हिन्दीप्रेमियों के एकमात्र प्रेमाराध्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पूरा परिचय मिल जाय।

दिल्ली के "शाही" घराने से इनके 'प्रतिष्ठित' पूर्वजों का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध था। जब शाहजहां का बेटा शाह शूजा सन् १६५० के लगभग 'विशाल' बङ्गाल का सूबेदार होकर आया, तो इनके पूर्वज भी उसके साथ दिल्ली छोड़ बङ्गाल में चले आए, और जैसे जैसे मुसलमानी राजधानी बङ्गाल में बदलती गई वैसे वैसे ये लोग भी अपना प्रवासस्थान परिवर्तन करते गए। राजमहल और मुर्शिदाबाद में अब तक इनके पूर्वजों के उच्च प्रासादों के अवशिष्ट चिन्ह पाए जाते हैं। इसी विशाल वंश के सेठ बालकृष्ण के पौत्र तथा सेठ गिरिधारी लाल के पुत्र सेठ अमीचन्द के समय में इस देश में अङ्गरेज़ों का राजत्वकाल प्रारम्भ हुआ। उस समय अङ्गरेज़ों के सहायकों में से ये भी एक प्रधान सहायक थे। उस समय इनका इतना मान था कि इनके नौ बेटों में से तीन को "राजा" और एक को "रायबहादुर" की पदवी प्राप्त थी। इन पुत्रों में से वंश केवल बाबू फ़तहचन्द्र का चला। सेठ अमीचन्द्र का वृत्तान्त इतिहासों में इस प्रकार से प्रसिद्ध है।

सेठ अमीचन्द का चार लाख रुपया कलकत्ते में लुट गया था, और भी बहुत कुछ हानि हो गई थीं; परन्तु नव्वाब की ओर से उसकी कुछ भी रक्षा न हुई। निदान योंही देश को दुखित देख जब लोगों ने अङ्गरेज़ों की शरण ली तो ये भी उनमें एक प्रधान पुरुष थे। इनसे अङ्गरेज़ों से यह दृढ़ प्रतिज्ञा हो गई थी कि सिराजुद्दौला के कोष से जो द्रव्य प्राप्त होगा उसमें से पांच रुपैया सैंकड़ा तुम्हें मिलेगा, और दो प्रतिज्ञापत्र लिखे गए। लाल काग़ज़ पर जो लिखा गया उस पर सेठ अमीचन्द को ५) रुपया सैकड़ा देने को लिखा गया था, परन्तु सफेद कागज पर जो लिखा गया उस पर इनका नाम तक न लिखा। जब हस्ताक्षर होने के हेतु कौंसिल में ये पत्र उपस्थित हुए तो 'एडमिरल' ने लाल काग़ज़ पर हस्ताक्षर करना सर्वथा

ग्रस्वीकार किया पर कौंसिल वालों ने उनका हस्ताक्षर बना लिया। बङ्गाल विजय के पश्चात् जब ख़ज़ाना सहेजा गया तो डेढ़ करोड़ मुद्रा निकला। सेठ ग्रमीचन्द ने तीस पैंतीस लाख मुद्रा मिलने का हिसाब जोड़ रक्खा था। जब प्रतिज्ञापत्र पढ़ा गया ग्रैार इनका नाम तक न निकला तो इन्होंने उस षटचक्र से घबड़ा कर कहा "साहब, वह लाल काग़ज़ पर था"। लार्ड क्लाइव ने उत्तर दिया "यह ग्रापको सब्ज़ बाग़ दिखाने को था। ग्रसिल यही सफ़ेद है"। सेठ ग्रमीचन्द इस वाक्य के व्याघात से मूर्छित होकर गिर पड़े। लोग उन्हें पालकी में डाल कर घर लाए। इसी प्रबल पीड़ा से डेढ़ वर्ष के पश्चात् वे परमधाम पधारे।

राजा शिवप्रसाद लिखते हैं कि "ग्रफ़सोस है क्लाइव ऐसे ग्रादमी से ऐसी बात ज़हूर में ग्रावे; पर क्या करें, ईश्वर को मन्ज़ूर है कि ग्रादमी का कोई काम बेऐब न रहे। इस मुल्क में ग्रंगरेज़ी ग्रमल्दारी की सचाई में, जो मानो धोबी की धोई हुई सफ़ेद चादर रही है, केवल उसी 'ग्रमीचन्द' ने उसमें एक छोटा सा धब्बा लगा दिया है *"।

* मीर जाफ़र, ग्रमीचन्द (ग्रमियचन्द्र) "A man of vast wealth") ग्रैार खोजा वज़ीद ये तीन जन थे कि जिनकी सहायता से पलासी युद्ध में ग्रंगरेज़ विजयी हुए। मीरजाफ़र (सेनापति) को नव्वाब बनाने की लालच दी गई ग्रैार सेठ ग्रमीचन्द को उनका बहुत रुपया, जिसे सिराजुद्दौला ने ग्रन्याय से ले लिया था, युद्ध जीतने ग्रैार कोष पाने पर देने का वादा किया गया। पीछे रुपया देख क्लाइव लोभ में ग्रागया। इसी लोभ ने हेष्टिङ्गस् का नाम चिरस्मरणीय बनाया ग्रैार इसीने यह हत्या करा ग्रात्मलय के लिये उनके ग्रैार शुभ्र ग्रंगरेज़ी राज्य के नाम में कलङ्क लगा दिया। कितने ग्रङ्गरेज़ इतिहासलेखकों ने यद्यपि एक स्वजाति की करनी को बड़ी बड़ी बातें बना गोपन रखना चाहा है, तथापि कितने न्यायशीलों ने क्लाइव को साफ़ दोषी ठहराया है। ग्रधर्म सभी स्थल ग्रैार सभी समय ग्रधर्म है। राज सेक्रेटरी T. Talboys Wheeler कहते हैं;—But the action of Clive, although it did not put a penny in his pocket, has been condemned to this day as a stain upon his character as an English gentleman." बाबू ग्रक्षय कुमार मैत्रेय ने ग्रपने ग्रन्थ "सिराजुद्दौला" में इसका वास्तविक ऐतिहासिक विवरण लिखा है जो लेखान्तर में लिखा जायगा।

सेठ ग्रमीचन्द के पुत्र सुयोग्य सेठ फ़तहचन्द इस घटना से ग्रत्यन्त उदास होकर काशी चले ग्राए। इनका विवाह काशी के परम प्रसिद्ध नगर-सेठ गोकुलचन्द साहु की कन्या से हुग्रा। सेठ गोकुलचन्द के पूर्वजों ने काशी के वर्तमान राज्यवंश को काशी का माननीय राज्य, मीर रुस्तमग्रली को पदच्युत कराके, ग्रवध के नवाब से प्राप्त कराने में बहुत कुछ उद्योग किया था ग्रैार तभी से वह उस राज्य के महाजन नियत हुए, तथा प्रतिष्ठापूर्वक "नैापति" की पदवी प्राप्त हुई।

जिन नैा महाजनों ने उस समय काशीराज के मूल पुरुष राजा मनसाराम को राज्य दिलाने में सर्व प्रकार सहायता दी थी, उन्हें नैापति की उपाधि दी गई थी। यह "नैापति" पदवी ग्रब तक प्रसिद्ध है, परन्तु ग्रब उन नवों वंशों में केवल इसी एक वंश का पता लगता है। ग्रैार उसी समय से इनके यहां विवाहादि शुभ कर्म्मों, तथा शोकसमय शोकसम्मिलन तथा पगड़ी बन्धवाने के हेतु, स्वयम् काशीराज उपस्थित होते हैं। यह मान इस वंश को ग्रब तक प्रतिष्ठापूर्वक प्राप्त है। सेठ गोकुलचन्द के ग्रैार कोई सन्तान न होने के कारण बाबू फ़तहचन्द उनके भी उत्तराधिकारी हुए *।

बाबू फतह चन्द ने ग्रङ्गरेज़ों को राज्यादि के प्रबन्ध करने में बहुत कुछ सहायता दी थी। सूप्रसिद्ध "दवामी बन्दोबस्त" के समय डङ्कन

* ये हनुमान जी के बड़े भक्त थे। प्रति मङ्गलवार को काशी, भदैनी हनुमानघाट वाले बड़े हनुमान जी के दर्शन को जाया करते थे। काशी में बड़े हनुमान जी का मन्दिर परम प्राचीन ग्रैार प्रसिद्ध है। यहां केवल एक विशाल प्रस्तरमूर्त्ति हनुमान जी की है। एक दिन इन्हें जो प्रसाद में माला मिली वह पहिरे हुए घर चले ग्राए। यहां ग्राकर जो माला उतारी तो ऊसमें से एक हनुमान जी की स्वर्णप्रतिमा छोटी सी ग्रंगुष्ठप्रमाण गिर पड़ी। उसी समय से इस प्रतिमा की सेवा बड़ी भक्ति से होने लगी ग्रैार ग्रब तक इस वंश में कुलदेव यही महावीर जी हैं। यह मूर्ति साधारण हनुमान जी की भांति नहीं है, वरञ्च बिलकुल वानराकृति है ग्रैार एक हाथ में लड्डू लिए हुए है।

साहब ने इनकी सहायता का पूर्ण धन्यवाद दिया है। इनके काशी आ बसने के कुछ काल उपरान्त उनके बड़े भाई राय रत्नचन्द्र बहादुर भी मुर्शिदाबाद से यहां ही चले आए। उनके साथ डङ्का, निशान, सन्तरी का पहरा, माही, मरातिब, नकीब आदि रियासत के पूरे ठाठ थे।

राय रत्नचन्द्र बहादुर ने रामकटोरेवाले बाग में आकर निवास किया। वहां इनके श्रीठाकुर जी, जिनका नाम श्रीलाल जी है, अब तक वर्तमान हैं। यही बाग़ काशी जी में इस वंश का पहिला स्थान समझा जाता है तथा अब तक प्रत्येक विवाह और पुत्रोत्सव के पीछे डीह डीहवार (गृह देवता) की पूजा यहीं होती है। प्रतीत होता है कि ये उस समय तक श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी थे, क्योंकि ठाकुर जी की मूर्ति तथा सामने गरुड़स्तम्भ और मन्दिर के ऊपर चक्रस्थापन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत है। इस वंश में 'नकीब' की प्रथा बाबू गोपालचन्द्र तक थी। बाबू फ़तह चन्द का व्यवहार देन लेन का था।

बाबू फ़तहचन्द के एक मात्र पुत्र बाबू हर्षचन्द हुए। ये काशी में काले हर्षचन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनके प्रशंसनीय गुणानुवाद अब तक साधारण जन तथा स्त्रिएं ग्राम्यगीतों में गाया करती हैं।

बाबू हर्षचन्द के बाल्यकाल ही में इनके पूजनीय पिता ने परलोक प्रवास प्राप्त किया। लोगों ने इनके उमङ्ग का अच्छा अवसर उपस्थित देख इन्हें राय रत्नचन्द्र बहादुर से लड़ा दिया। परन्तु ज्यों हीं इन्होंने धूर्त्तों की धूर्त्तता समझी, चट पितृव्य के पावों पर जा गिरे और उन्होंने अपराध क्षमा कराकर प्रेमपल्लव को प्रवर्धित किया। राय रत्नचन्द्र के बेटे बाबू रायचन्द्र निस्सन्तान मरे। इससे उनकी भी सम्पूर्ण सम्पत्ति के उत्तराधिकारी ये ही हुए।

इनका सम्मान काशी में कैसा था इसीसे समझ लीजिए कि, सन् १८४२ में गवर्न्मेण्ट ने आज्ञा दी कि काशी को प्राचीन तौल की पन्सेरियां उठा कर अंग्रेज़ी पन्सेरी जारी हो। काशी के लोग बिगड़ गए और हरताल कर दी; तीन दिन तक हरताल रही; अन्त में उस समय के प्रसिद्ध कमिश्नर गबिन्स साहब ने बाबू हर्षचन्द्र (सरपञ्च), बाबू जानकी दास और बाबू हरीदास साहू को पञ्च माना। काशी के लोगों ने भी इसे स्वीकार किया। बाग सुन्दरदास में बड़ी भारी पञ्चायत हुई और अन्त में यही फ़ैसला हुआ कि तिलोचन आदि की पन्सेरियां ज्यों की त्यों ही जारी रहें। गबिन्स साहब भी इससे सम्मत हुए और नगर में जय जयकार होगया। इस बात के देखनेवाले अब तक जीवित हैं कि जिस समय पुरानी पन्सेरियों के जारी रहने की आज्ञा लेकर उक्त तीनों महाशय हाथी पर सवार होकर चले, बीच में बाबू हर्षचन्द्र बैठे थे, मोरछल होता था, बाजे बजते थे, सारे शहर की खिलकत साथ थी और स्त्रियें खिड़कियों से पुष्पवर्षा करती थीं, तथा इस सवारी को लोगों ने इसी शोभा के साथ नगर में घुमाया था।

बुढ़वामंगल के प्रसिद्ध मेले को उन्नति देने वाले यही थे। पहिले लोग वर्ष के अन्तिम मंगल को जिसे बूढ़ा मंगल कहते थे, दुर्गाजी के दर्शनों को नाव पर सवार हो कर जाया करते थे। धीरे धीरे उन नावों पर नाच भी कराने लगे और अन्त में बाबू हर्षचन्द्र तथा काशीराज के परामर्शानुसार बुढ़वामंगल का वर्तमान रुप हुआ और मेला चार दिन तक रहने लगा। मैंने कई बेर काशीराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से कहते सुना है कि इस मेले का दूलह तो तुम्हारा ही वंश है। इनके यहां बुढ़वामङ्गल का कच्छा बड़ी ही तैयारी के साथ पटता था और बड़े ही मर्यादापूर्वक प्रबन्ध होता था। बिरादरी में नाई का नेवता फिरता था और सब लोग गुलाबी पगड़ी और दुपट्टे तथा लड़के को गुलाबी टोपी दुपट्टे पहिना कर ले जाते थे। नौकर आदि भी गुलाबी ही पगड़ी दुपट्टे पहिरते थे। जिनके पास न होता उनको यहां से

मिलता। गंगा जी के पार रेत में हलवाईख़ाना बैठ जाता और चारो दिन वहीं बिरादरी की जेवनार होती। काशीराज हर साल मोरपंखी पर सवार हो इनके कच्छे की शोभा देखने आते। यह प्रथा ठीक इसी रीति पर बाबू गोपालचन्द्र के समय तक जारी रही।

बुढ़वामंगल की भांति होली का उत्सव भी धूम धाम से होता और बिरादरी की जेवनार, महफ़िल होती। वर्ष में अपने तथा बाबू गोपाल चन्द्र के जन्मदिवस को ये महफ़िल जेवनार करते।

बिरादरी में इनका ऐसा मान्य था कि लोग बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिकों के रहते भी इन्हें अपना चैाधरी मानते थे और यह प्रतिष्ठा इस वंश को आज तक प्राप्त है।

चैाखम्भास्थित अपने प्रसिद्ध भवन में इन्होंने ही सुन्दर दीवानख़ाना बनवाया था। सुनते हैं कुछ ऐसा बिवाद उस समय उपस्थित हो गया था कि जिसके कारण इस बड़े दीवानख़ाने की एक मंज़िल इन्होंने एक रात्रि में तैयार कराई थी।

उस समय इनकी सवारी प्रसिद्ध थी। जब ये घर के बाहर कहीं जाते, बिना जामा और पगड़ी पहिरे न जाते, ताम जाम पर सवार होकर जाते, नकीब बोलता जाता। आसा, बल्लम, छड़ी, तलवार, बन्दूक आदि बांधे पचास साठ सिपाही साथ में होते। यह प्रथा कुछ कुछ बाबू गोपाल-चन्द्र तक थी।

ये गोस्वामी श्री गिरिधर जी महाराज के शिष्य हुए। श्री गिरिधर जी महारज की विद्वत्ता तथा अलैाकिक चमत्कार शक्ति लोकप्रसिद्ध है। यदि ईश्वरेच्छा होगी तो कभी उनका जीवनचरित्र भी लिखकर प्रकाशित करूंगा। श्री गिरिधर जी महाराज इन पर बहुत ही स्नेह रखते थे, यहां तक कि इनकी बेटी श्रीश्यामा बेटी जी इन्हें भाई के तुल्य मानतीं और भाईदूज को तिलक काढ़ती थीं। जिस समय श्री गिरिधर जी महाराज श्री जी द्वार से श्री मुकुन्दराय जी को पधराकर काशी लाए, सब प्रवन्ध इन्हींको सैांपा गया था। बड़ी धूम धाम से बारात सजा कर श्री मुकुन्दराय जी को नगर के बाहर से येही पधरा लाए थे। इसका सविस्तर वर्णन उक्त महाराज की लिखाई "श्री मुकुन्दराय जी की वार्ता" में है। जब कभी महाराज बाहर पधारते, मन्दिर इन्हींके सपूर्द कर जाते। उक्त महाराज तथा श्रीश्यामा बेटी जी के लिखे मुख्तारनामा आम इनके तथा बाबू गोपाल चन्द्र जी के नाम के अब तक रक्षित हैं।

इन्होंने उक्त महाराज की आज्ञा से अपने घर में श्री वल्लभकुल के प्रथानुसार ठाकुर जी की सेवा पधराई और उनके भोग राग का प्रवन्ध राजसी ठाठ से किया। ठाकुरजी की परम मनोहर मूर्ति, युगल जोड़ी, धातुविग्रह है, तथा नाम "श्री मदनमोहन जी" है। वर्तमान शैली से सेवा होते हुए ८५ वर्ष से अधिक हुआ; परन्तु सुनते हैं कि ठाकुरजी और भी प्राचीन हैं। पहिले इनकी सेवा गोकुलचन्द्र साहो के यहां होती थी। बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू गोकुलचन्द्र में जिस समय हिस्सा हुआ, एक बाग़, बड़ा मकान, एक बड़ा ग्राम माफ़ी और पचास हज़ार रुपया ठाकुर जी के हिस्से में अलग कर दिया गया है, और ठाकुर जी का महाप्रसाद नित्य ब्राह्मण वैष्णव तथा सद्गृहस्थ लेते हैं।

इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम चम्पतराय अमीन की बेटी से। इन चम्पतराय का उस समय बड़ा ज़माना था। सुनते हैं कि वह इतने बड़े आदमी थे कि सोने की थाल में भोजन करते थे। सुना है कि जिस समय चम्पतराय की बेटी व्याह कर आई तो यहां उन्हें मामूली बर्तन बर्तने पड़े। इसपर उन्होंने कहा "हाय, अब हमको इन बर्तनों में खाना पड़ेगा"। अब एक चम्पतराय अमीन के बाग़ के अतिरिक्त और कोई चिन्ह इनका नहीं है। इनसे बाबू हर्षचन्द्र को कोई सन्तान नहीं हुई। दूसरा विवाह इनका बाबू वृन्दाबन दास की कन्या श्यामा बीबी से हुआ। इन्हींसे इनको पांच सन्तान हुईं, जिनमें से दो कन्या तो बचपन ही में

मर गईं, शेष तीन का वंश चला। यह बाबू वृन्दाबन दास भी उस समय के बड़े धनिकों में थे, परन्तु पीछे इनका भी वह समय न रहा। इनके दो बाग़ थे, एक मौज़ा कोल्हुआ पर और दूसरा महल्ला नाटी इमली पर। ये दोनों बाग़ बाबू हर्षचन्द्र को मिले। बाबू वृन्दाबन दास को हनुमान जी का बड़ा इष्ट था। इनके स्थापित हनुमान जी अब तक नाटी इमली के बाग़ में हैं।

एक समय श्री गिरिधर जी महाराज को चालिस सहस्त्र रुपए की आवश्यकता हुई। उन्होंने बाबू हर्षचन्द्र से कहा कि इसका प्रबन्ध करदो। इन्होंने कहा महाराज, इस समय इतना रुपया तो प्रस्तुत नहीं है। कोल्हुआ और नाटी इमली का बाग़ मैं भेट कर देता हूं, इसे बेच कर काम चला लीजिए। श्री महाराज का ऐसा प्रताप था कि एक कोल्हुआ का बाग़ चालीस हज़ार में बिक गया और नाटी इमली का बाग़ बच गया। इस बाग़ का नाम महाराज ने मुकुन्दबिलास रक्खा। यह अद्यावधि मन्दिर के अधिकार में है और काशी के प्रसिद्ध बाग़ों में एक है। इस वंश से इस बाग़ से अब तक सम्बन्ध इतना शेष है कि काशी के प्रसिद्ध भरतमिलाप के मेले में इसी बाग़ के एक कमरे में बैठ कर भगवान का दर्शन इस वंश के लोग करते हैं और इसमें भगवान का विमान ठहरता है, तथा इस वंशवाले जाकर पूजा, आरती करते, भोग लगाते और १) नक़द भेट करते हैं।

यहां पर इस रामलीला का संक्षिप्त इतिहास लिखा देना भी हम उचित समझते हैं। जब काशी में जंगल बहुत था (बनकटी के समय), यहां एक मेघा भगत रहते थे। उन्हें श्रीभगवान के दर्शन की बड़ी लालसा हुई। उन्होंने अनशन व्रत लिया। एक दिन रामचन्द्रजी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि इस कलियुग में इस चाक्षुष जगत में हमारा प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता। तुम हमारी लीला का अनुकरण करो। उसमें दर्शन होगा; तथा एक धनुष बाण वहां प्रत्यक्ष छोड़ गए, जिसकी पूजा अब तक होती है। मेघा भगत ने लीला आरम्भ की और उनकी मनोवासना पूरी हुई। यह लीला चित्रकोट की लीला के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिस दिन श्री रामचन्द्र की झलक मेघा भगत को झलकी थी, वह भरतमिलाप का दिन था और तभी से यह दिन परम पुनीत समझा गया, तथा अब तक लोगों का विश्वास है कि उस दिन रामचन्द्रजी की झलक आजाती है। इस लीला के पीछे गोस्वामी तुलसी दास जी ने लीला आरम्भ की, जो अब तक अस्सी पर तुलसीदास जी के घाट पर होती है, और उसके पीछे लाट भैरव की लीला का आरम्भ हुआ। इस लाटभैरव की लीला में 'नककटैया' (शूर्पनखा की नाक काटने की लीला) मसजिद के भीतर होती है, जो प्रथा कि बहुत ही प्राचीन समय से मुसलमानों की अमलदारी से चली आती है, और प्रायः इसीके लिये काशी में हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा हुआ किया है। निदान मेरी समझ में रामलीला की प्रथा सर्व प्रथम संसार में मेघा भगत ने आरम्भ की। इस लीला की यहां प्रतिष्ठा बहुत ही अधिक है। सब महाजन लोग इसमें चिट्ठा भरते हैं और प्रतिष्ठित लोग बिना कुछ लिए सब सेवा करते हैं। इस चिट्ठे का आरम्भ पहिले पहिले बाबू जानकीदास और उक्त बाबू हर्षचन्द्र के वंशवाले करते हैं और फिर नगर के सब महाजन यथाशक्ति लिखते हैं। पहिले तो विजया दशमी के दिन यहां के बड़े बड़े महाजन, रात्रि को जब विमान उठता था, जामा पगड़ी पहिर कर कन्धा लगाते थे। अब तक भी बहुत लोग कन्धा देते हैं। विजया दशमी और भरतमिलाप में अब तक प्राचीन मर्यादावाले लोग पगड़ी पहिर कर दर्शन को जाते हैं। भरतमिलाप यहां के प्रसिद्ध मेलों में है। सारा शहर सूना हो जाता है और भरतमिलाप के स्थान से लेकर 'अयोध्या' तक, जोकि लगभग आधी मील का अन्तर होगा, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते हैं। भरतमिलाप ठीक गोधुली के समय होता है। इस दिन दर्शनों के

लिये काशिराज भी सदा से ग्राया करते थे। परन्तु एक बेर महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह के समय में उन्हें ग्राने में देर हुई ग्रैार इधर समय हो गया। लोगों ने महाराज की प्रतीक्षा न करके भरतमिलाप करा दिया। तब से उक्त महाराज नहीं ग्राते थे, परन्तु वर्तमान काशिराज श्री महाराज प्रभुनारायण सिंह बहादुर फिर ग्राने लगे हैं।

सुनते हैं एक समय किसी ग्रंगरेज़ हाकिम ने कहा कि हनुमान जी तो समुद्र पार कूद गए थे; तब हम जानै जब तुम्हारे हनुमान जी वरुणा नदी पार कूद जायँ। हनुमान जी चट कूद गए, परन्तु उस पार जाते ही उनका प्राणान्त हो गया। उस ग्रंगरेज़ की सर्टिफिकेट ग्रब तक महन्त के पास है।

बाबू हर्षचन्द्र का स्वभाव ग्रत्यन्त उदार ग्रैार उच्च था। गोस्वामी श्री बाबू हरिकृष्णदास टेकमाली ने ग्रपने ग्रन्थ "गिरिधरचरितामृत" में उनका चरित्र वर्णन करते समय लिखा है कि ये कविता भी करते थे, परन्तु ग्रब तक इनकी कोई कविता हम लोगों के देखने में नहीं ग्राई है॥"

मन्दिर के दोनो नक्कारख़ाने इन्हींके बनवाए हुए हैं। एक तो बाबू गोपालचन्द्र के जन्म पर बना था ग्रैार दूसरा बाबू हरिश्चन्द्र के जन्म पर।

एक बेर यह श्री जगन्नाथ राय जी के दर्शन को पुरी गए थे। तब तक रेल नहीं चली थी, ग्रतएव खुश्की के रास्ते गए थे। बङ्गाल के प्रसिद्ध लाला बाबू * से इनके वंश से मुर्शिदाबाद ही से बहुत सम्बन्ध था। एक दिन ये उनके यहां मेहमान हुए। वहां इनके ठाकुर श्री कृष्णचन्द्र जी का बहुत भारी मन्दिर ग्रैार वैभव है। सुना है कि इनके पहुंचते ही उनकी ग्रोर से श्री ठाकुर जी का बालभोग महाप्रसाद ग्राया जो कि सैा चांदी के थालों में था। सब प्रसाद फलहारी ही था ग्रैार एक सैा ब्राह्मण लाए थे, जो सबके सब एक ही रङ्ग का पीताम्बर उपरना पहिरे हुए थे।

इनका नाम तैलंग देश में बहुत प्रसिद्ध है। जो बड़ा दीवानखाना इन्होंने बनवाया, उसके उपर एक छोटा मन्दिर भी श्री ठाकुर जी का है। उस पर स्वर्ण कलश लगा हुग्रा है। उसीसे सारे तैलङ्ग देश में इनका नाम नवकोटि नारायण† नाम से प्रसिद्ध हो गया है ग्रैार यावत् तैलङ्गी लोग इस कलश के दर्शनार्थ ग्राते ग्रैार हाथ जोड़ जाते हैं। यह बात काशी के यावत यात्रावालों को विदित है; जहां उन्होंने नवकोटि नारायण का नाम लिया, वह यहां ले ग्राए।

बाबू गोपालचन्द्र

बाबू हर्षचन्द्र की बड़ी ग्रवस्था हो गई ग्रैार कोई पुत्र सन्तान न हुई। एक दिन यह श्री गिरिधरजी महाराज के पास बैठे हुए थे। महाराज ने पूछा बाबू, ग्राज तुम उदास क्यों हो? लोगों ने कहा कि

---

* इस वंश के ग्रधिष्ठाता दीवान गङ्गा गोबिन्द सिंह थे, जो कि वारेन हेस्टिङ्ग्ज़ के बनिया थे, ग्रैार बड़ी सम्पत्ति छोड़ मरे। बङ्गाल में ये पाइकपाड़ा के राजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। परन्तु इनका मुख्य वासस्थान मैाज़ा कांदी ज़िला मुर्शिदाबाद है। इन्होंने ग्रपनी माता के श्राद्ध में २० लाख रुपया व्यय किया था ग्रैार उसमें समग्र बङ्गाल के राजा महाराजा ग्राए थे। ऐसा श्राद्ध कभी नहीं हुग्रा था। इनके वंश में राजा कृष्णचन्द्र सिंह प्रसिद्ध नाम लाला बाबू हुए। उन्होंने ग्रपने राज्यैश्वर्य को छोड़ कर श्री वृन्दावन में वास किया। वहां वे मधुकरी मांग कर खाते थे। परम वैष्णव श्री ठाकुर जी का मन्दिर ग्रैार वैभव कांदी ग्रैार श्री वृन्दावन में बहुत बढ़ाया (See Growse's Mathura)। इनके विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ग्रपने उत्तरार्द्ध भक्तमाल में लिखते हैं—

लाला बाबु बङ्गाल के वृन्दावन निवसत रहे।
छोड़ि सकल धन धाम वास ब्रज को जिन लीनी॥
मांगि मांगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो।
हरि मन्दिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो॥
साधु संत के हेत अन्न को सत्र चलायो।
जिनकी मृत देहहु सब लखत ब्रज रज लोटन फल लहे॥

† तैलङ्ग देश में कोई नवकोटि नारायण बड़े धनिक हो गए हैं। इन्हें वहां के लोग एक ग्रवतार मानते हैं ग्रैार इनके विषय में नाना किम्वदन्ती उस देश में प्रसिद्ध है। इनका पूरा इतिहास Indian Antiquary में छपा है।

इनकी इतनी अवस्था हुई, परन्तु कोई सन्तान न हुई, वंश कैसे चलेगा; इसीकी चिन्ता इन्हें है। महाराज ने आज्ञा की कि तुम जी छोटा न करो। इसी वर्ष तुम्हें पुत्रसन्तान होगी। और ऐसा ही हुआ। मिती पौष कृष्ण १५, संवत १८९० को कवि-कुलचूड़ामणि बाबू गोपालचन्द्र का जन्म हुआ। केवल श्रीगिरिधर जी महाराज की कृपा से जन्म पाने और उनके चरणारविन्दों में अटल भक्ति होने के कारण ही इन्होंने कविता में अपना नाम गरिधरदास रक्खा था।

विवाह

बाबू हर्षचन्द्र को एक पुत्र के अतिरिक्त दो कन्या भी हुईं बड़ी का नाम यमुना बीबी (जन्म भादो ब० ८, सं० १८९२) और छोटी गंगा बीबी (जन्म भादों ब० ४, सं०१८९४)

बाबू हर्षचन्द्र ने अपनी तीन सन्तानों में से दो का विवाह अपने हाथों किया। पहिले यमुना बीबी का, पीछे बाबू गोपाल चन्द्र का। गंगाबीबी का विवाह बाबू गोपालचन्द्र के समय में हुआ।

यमुना बीबी का विवाह काशी के प्रसिद्ध रईस, राजा पट्टनीमल बहादुर के पौत्र राय नृसिंहदास से हुआ। राजा पट्टनीमल, पटने के महाराज ख्यालीराम बहादुर के पौत्र थे। यह महाराज ख्यालीराम बिहार के नायब सूबेदार थे। इनका सविस्तर वृत्तान्त बङ्गाल और बिहार के इतिहासों में मिलता है। राजा पट्टनीमल ऐसे प्रतापी हुए कि ये छोटी ही अवस्था में पिता से कुछ अप्रसन्न होकर चले आए और फिर लखनऊ गए। वहां उस समय अंगरेज़ गवर्न्मेंण्ट से और नवाब लखनऊ से सुलह की शर्तें तै हो रही थीं। परन्तु नवाब के चालाक अनुचरवर्ग कभी कुछ कह देते, कभी कुछ; किसी तरह बात तै न होने पाती। निदान उन शर्तों को तै करने के लिये राजा पट्टनीमल नियत किए गए। इन्होंने पहिले ही यह नियम किया कि हम ज़ुबानी कोई बात न करेंगे, जो कुछ हो लिख कर तै हो। अब तो कोई कला उन लोगों की न चलने लगी। नवाब की ओर से राजा साहब के उस्ताद मौलवी साहब भेजे गए। राजा साहब ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और पूछा क्या आज्ञा है। मौलवी साहब ने एक लाख रुपए की अशर्फ़ियां राजा साहब के आगे रख दीं और कहा कि आप नवाब पर रहम करें। हिन्दू मुसलमान तो एक ही हैं, ये फ़रङ्गी परदेसी हमारे कौन होते हैं। सुलहनामे में नवाब के लाभ को और विशेष ध्यान रक्खें, अथवा आप इस काम से अलग ही हो जांय। राजा साहब ने बहुत ही अदब के साथ निवेदन किया कि आप उस्ताद हैं, आपको उचित है कि यदि मैं कोई अनुचित कार्य करूं तो मुझे ताड़ना दें, न कि आप स्वयं ऐसा उपदेश मुझे दें। यह सेवकधर्मविरुद्ध काम मुझसे कभी न होगा और देशी तथा विदेशी क्या, हमारे लिये तो जब विदेशी की सेवा स्वीकार कर ली, तो फिर वह लाख देशियों से बढ़ कर है। निदान मौलवी साहब मुंह ऐसा मुंह लेकर चले आए। कहते हैं कि राजा साहब को आगरे के क़िले से बहुत धन मिला, जिसका ठीका उन्होंने राय ज्योतिप्रसाद ठीकेदार के साझे में लिया था। उन्होंने मथुरा वृन्दाबन में दीर्घबिष्णु का मन्दिर, शिव-तालाब, कुंज आदि (See Growse's Mathura), आगरे में शीशमहल, पीली कोठी आदि, दिल्ली में आलीशान मकानात, काशी में कीर्त्तिवासेश्वर का मन्दिर, हरतीर्थ, कर्मनाशा का पुल आदि सैंकड़ों हो कीर्ति के अतिरिक्त एक करोड़ को सम्पत्ति छोड़ी; और इनका पुस्तकालय तथा औषधालय भी बहुत प्रसिद्ध था (भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित "पुरावृत्तसंग्रह" देखो)। हम राजा साहब के उदार हृदय का उदाहरण दिखाने के लिये केवल एक घटना का उल्लेख करके प्रकृत विषय का वर्णन करेंगे। राजा साहब के मुख्तार बाबू बेनी प्रसाद राजा साहब के किसी कार्यवश कलकत्ते गए थे। वहां लाख रुपए पर दस दस रुपए की

चिट्ठी पड़ती थी। एक चिट्ठी इन्होंने भी राजा साहब के नाम से डलवा दी और राजा साहब को लिख दिया। राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि मैं जुआ नहीं खेलता, यह तुमने ठीक नहीं किया; ख़ैर अब तुम इस रुपए को ख़र्च में लिखदो। संयोगवश वह चिट्ठी राजा साहब के नाम ही निकल आई और लाख रुपया मिला। बाबू बेनी प्रसाद ने फिर राजा साहब को लिखा। राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि हम पहिले ही लिख चुके हैं कि हम जुआ नहीं खेलते, अतएव हम जूए का रुपया न लेंगे, तुम्हारा जो जी चाहै करो। उसी रुपए के कारण उक्त बाबू बेनी प्रसाद के वंशधर काशी में बड़े गृह और ज़िमीदारी के स्वामी हैं। इस विवाह में राजा साहब जीवित थे। सुना है कि बड़ी धूम का विवाह हुआ था और बड़ी ही शोभा हुई थी।

यमुना बीबी को कई सन्तति हुई, परन्तु कोई भी न जीई। इससे अन्त में राय प्रह्लाददास और उनकी कनिष्ठ भगिनी सुभद्रा बीबी अपने ननिहाल में पले। राय प्रह्लाद दास इस समय काशी में आनरेरी मेजिस्ट्रेट हैं। ननिहाल के संसर्ग से इनकी रुचि संस्कृत की ओर अधिक हुई और ये अच्छी संस्कृत जानते हैं। सुभद्रा बीबी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध धनिक साहो गोपालदास के वंशज बाबू वैद्यनाथ प्रसाद के साथ हुआ था। परन्तु अब वे दोनो ही पति पत्नी जीवित नहीं हैं। केवल उनके पुत्र बाबू यदुनाथ प्रसाद उनके उत्तराधिकारी हैं।

गङ्गा बीबी का विवाह प्रबन्धलेखक के पिता बाबू काल्यानदास के साथ हुआ। इन्हें दो पुत्र और एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र जीवनदास का बचपन ही में परलोकवास हुआ। कन्या लक्ष्मीदेवी का विवाह बाबू दामोदर दास बी ए. के साथ हुआ था जो कि निःसन्तान ही मर गईं। तीसरा पुत्र इस प्रबन्ध का लेखक है।

बाबू गोपाल चन्द्र का विवाह दिल्ली के शाहजादों के दीवान राय खिरोधर लाल की कन्या पार्वती देवी से संवत १९०० में हुआ। राय खिरोधर लाल का वंश फारसी में विशेष विद्वान था और इन्हें वंश परम्परागत राय की पदवी दिल्ली दर्बार से प्राप्त थी। राय साहब को एक ही कन्या थी। इधर बाबू हर्षचन्द्र को एक ही पुत्र। विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। बाबू हर्षचन्द के चौखम्भास्थित घर से राय खिरोधर लाल का शिवालास्थित भवन तीन मील से कम नहीं है, परन्तु बारात इतनी भारी निकली थी कि वर अपने घर ही था कि बारात का निशान समधी के घर पहुंचा, अर्थात् तीन मील लम्बी बारात थी। राय साहब ने भी ऐसी ख़ातिर की थी कि कूओं में चीनी के बोरे छुड़वा दिए थे। अस्तु यह विवाह काशी में अब तक प्रसिद्ध है।

यह पार्वती देवी अत्यन्त ही सुशीला थीं। प्राचीन स्त्रिएं इनके रूप और गुण की प्रशंसा करते नहीं अघातीं। इन्हें चार सन्तति हुईं। मुकुन्दी बीबी, बाबू हरिश्चन्द्र; बाबू गोकुल चन्द्र और गोविन्दी बीबी।

श्रीमती पार्वती देवी के मरने पर इनका दूसरा विवाह उसी वर्ष फाल्गुण संवत १९१४ में बाबू रामनारायण की कन्या मोहन बीबी से हुआ। मोहन बीबी से इन्हें दो सन्तान हुए। प्रथम पुत्र हुआ। नाम उसका श्याम चन्द्र रक्खा गया था, परन्तु तीन ही महीने का होकर मर गया। द्वितीय कन्या हुई जो कि प्रसूतिगृह में ही मर गई। मोहन बीबी को मृत्यु संवत १९३८ के माघ कृष्ण १० को हुई।

बाबू हर्षचन्द्र का परलोकवास ४२ वर्ष की अवस्था में संवत १९०१, मिती वैसाख बदी १३, को हुआ। बाबू गोपालचन्द की अवस्था उस समय केवल ११ वर्ष ही की थी। कविता की कमनीय कान्ति का अनुराग बाबू गोपालचन्द्र को बाल्यावस्था ही से था। इसीसे आप लोग समझ

लीजिए कि १३ ही वर्ष की अवस्था में संवत १९०३ में वृहत् बाल्मीकीय रामायण का भाषा छन्दोवद्ध अनुवाद इन्होंने किया, परन्तु दुर्भाग्यवश अब इस अनुवाद का पता कहीं नहीं लगता है। केवल अस्तित्व के प्रमाण के लिये ही मानो "बालाबोधिनी" में इसका एक अंश छपा है। हिन्दी और संस्कृत की कविता इनकी प्रसिद्ध है। परन्तु कभी कभी उर्दू की भी कविता करते थे। उन्होंने एक "ग़ज़ल" में लिखा है।

"दास गिरिधर तुम फ़क़त हिन्दी पढ़े थे खूबसी,
किस लिये उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।

शिक्षा और चरित्र

पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि इतने बड़े धनिक के एक मात्र पुत्रसन्तान का लालन पालन कितने लाड़ चाव से हुआ होगा, और हमारे देश की स्थिति के अनुसार इनकी सी अवस्था के बालक, जिनके पिता भी बचपन ही में परलोकगामी हुए हों, कैसे सुशिक्षित और सच्चरित्र हो सकते हैं। परन्तु आश्चर्य है कि इनके विषय में सब विपरित ही हुआ। इनका सा विद्वान और सच्चरित्र ढूंढ़ने से कम मिलैगा। इसका कारण चाहे भगवतकृपा समझिए, या ऋषितुल्य गुरु श्रीगोस्वामी गिरधर जी महाराज का आशीर्वाद, सहवास और शिक्षा। जो कुछ हो, इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। नियम पूर्वक शिक्षा न होने पर भी संस्कृत और भाषा के ये ऐसे विद्वान थे कि पण्डितलोग इनका आदर करते थे। चरित्र इनका ऐसा निर्मल था कि काशी के लोग इन्हें बहुत ही भक्तिभाव से देखते थे, यहां तक कि प्रसिद्ध कमिश्नर मिस्टर गबिन्स ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "बाबू गोपालचन्द्र परकटा फरिश्ता है"। इनके विचार कैसे थे, यह पाठक पूज्य भारतेन्दुजी के निम्नलिखित वाक्यों से, जो उन्होंने 'नाटक' नामक ग्रन्थ में लिखे हैं, जान सकते हैं। "विशुद्ध नाटकरीति से पात्र-प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। मेरे पिता ने बिना अङ्गरेज़ी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि दी, यह बात आश्चर्य की नहीं है। उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अंगरेज़ी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरुप भली भांति विदित था। पहिले तो धर्म ही के विषय में वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत पूर्ण के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उन्होंने उठा दिया था। टामसन साहब लेफ़टिनेंट गवर्नर के समय काशी में पहिला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को इन्होंने उस स्कूल में प्रकाश्य रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत कठिन था, क्योंकि इसमें बड़ी ही लोकनिन्दा थी। हम लोगों को अंगरेज़ी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। ......केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देहत्याग किया, किन्तु इसी अवसर में ४० ग्रन्थ बनाए।"

दिनचर्या

व्यसन इन्हें भगवत्सेवा या कविता के अतिरिक्त कोई भी न था। जाड़े के दिनों में सवेरे तीन ही बजे से उठते और मन्दिर के भृत्यों को बुलवाते; और गर्मी के दिनों में पांच बजे शौचादि से निवृत्त होकर कुछ कविता लिखते। शौच जाते तब कलम दावात कागज़ बाहर रक्खा रहता। यदि कुछ ध्यान आजाता तो शौच से निकलते ही हाथ धोकर लिख लेते, तब दतुअन करते। कभी घर में श्री ठाकुर जी की सेवा में स्नान करने के पहिले श्री मुकुन्दराय जी के दर्शन को तामजाम पर बैठ कर जाते और कभी अपने यहां शृङ्गार की सेवा में पहुँच कर तब जाते। घर में भी ठाकुर जी की शृङ्गार की सेवा नित्य करते। सेवा से निकल कर कविता लिखते, लेखक चार पांच बैठे रहते उनको लिखवाते, राजभोग आरती करके दस ग्यारह बजे श्री ठाकुर जी की महाप्रसादी रसोई खाते।

भोजनोपरान्त कुछ देर दर्बार करते थे। घर के काम काज देखते। फिर दो पहर को कुछ देर सोते। तीसरे पहर को फिर दर्बार लगता। कबि-कोबिदों का सत्कार करते, कविता की चर्चा रहती, संध्या को हवा खाने जाते, गाड़ी तक ताम-जाम पर जाते। रामकटोरावाले बाग़ में जाकर भांग पीते। शौच होकर घर आते। हवा खाकर आने पर फिर दर्बार लगता। रात्रि को दस बजे तक भोजन करके सोते। सबेरे बिना कम से कम पांच पद बनाए भोजन न करते। संध्या को सुगन्धित पुष्प का गजरा या गुच्छा पास में अवश्य रहता। रात्रि को पलंग के पास एक चौकी पर कागज़, कलम, दावात, रहती, शमेदान रहता, एक चौकी पर पानदान और इत्रदान रहता। रात्रि को कविता कुछ अवश्य लिखते। स्वभाव हंसोड़ बहुत था, इसलिये जब बैठते, हंसी दिल्लगी होती, परन्तु दर्बार के समय नहीं।

कवियों का आदर

इनके दर्बार में कवियों का बड़ा आदर होता था। इनके यहां से कोई कवि विमुख न फिरता। यद्यपि इनके दर्बारी कवियों का पूरा वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है, तथापि दो तीन कवियों का जो पता लगा है, वह प्रकाशित किया जाता है।

एक कवि जी को (इनका नाम कदाचित ईश्वर कवि था) एक चश्मे की आवश्यकता थी। उन्होंने एक कविता बना कर दिया। उन्हें तुरन्त चश्मा मिला। उस कवित्त का अन्तिम चरण मुझे स्मरण है; वह यह है—

"खसमामुखी के मुख भसमा * लगाइवे को एहो धनाधीश हमें चाहत एक चसमा"।

एक कवि जी की यह कविता उपलब्ध हुई है—

पद्धलिया छन्द—" बैठे हैं विराजी राज मन्दिर में कियो साज सर्म को साज आसय आजिम अचल है। दविता को रहे अरि सविता को सागर में कविता कमलता के सबिता सबल है। कहै कविराज कर जोरे प्रभू गोपालचन्द ए बचन बिचारो मेरो विद्या की विमल है। बगर बड़ाई कोरु सर सोलताई को सुभाजन भलाई को सभाजन सकल है॥ १॥ दोहा॥ जहां अधिक उपमेय है छीन होत उपमान। अलंकार वितरेक को किज्जत तहां बिनान॥ जथा। बुध सों विरोधे सकल कलानिधि देखो दुःपश्य निर्मल सो न आदर सहै। गुरु से ईस मै गुरुज्ञान में बिलोकियतु कबिता अनेक कविताई को सरस है॥ द्वार आगे हैं राजत गजराज फेरियत रीझि रीझि दीजियत पायन परसतु (स?) है। कहैं संभू महाराज गोपालचन्द जू धरमराज की सभा तें सभा रावरी सरस हैं।"

* मुखरा सरस्वती के मुख में भस्म लगाने के लिये, अर्थात् कविता लिखने के लिये।



बाबू गोपालचन्द्र जी

सुप्रसिद्ध कवि सरदार ने इनके बलिराम कथामृत के आदि से "स्तुति प्रकाश" को लेकर उस पर टीका लिखी है। उसमें उक्त कवि ने इनके विषय में जो कुछ लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं।

छप्पै

विमल बुद्धि कुल वैस बनारस बास सुहावन ॥
फतेचन्द आनन्द कन्द जस चन्द बढ़ावन ॥
हरषचन्द ता नन्द मन्द बैरी मुख कीने ।
तासुत श्री गोपालचन्द कविता रस भीने ।
दश कथा अमृत बलराम मैं अस्तुति उह भूषन दियो ।
तेहि देखि सुबुध सरदार कबि बुधि समान टीका कियो ।

दोहा

लोक विभू ग्रह* संभु सुत रह सुचि भादव मास ।
कृष्णजन्म तिथि दिन कियो पूरन तिलक विलास ।

पूज्य भारतेन्दु जी ने इनके मुख्य सभासदों के नाम एक याददाश्त में इस प्रकार लिखे हैं—

पंडित ईश्वरदत्त जी (ईश्वर कवि), सरदार कवि, गोस्वामी दीनदयाल गिरि, कन्हैयालाल लेखक, पंडित लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्यानदास, माधोराम जी गौड़, गुलाबराम नागर और बालकृष्ण दास टकसाली ।

साधु महात्माओं का समागम

इनपर उस समय के साधु महात्माओं की भी बड़ी कृपा रहती थी और ये भी सदा उन लोगों की सेवा सुश्रुषा में तत्पर रहते थे। एक पुर्ज़ा उस समय का मुझे मिला है जो अविकल प्रकाशित किया जाता है—

"राम किंकर जी अयोध्या के महन्त जिनका नाम जाहिर है आपने बी सुना होगा, बड़े महात्मा हैं सो राधिका दास जी के स्थान पर तीन चार रोज से टिके हैं अभी उनके साथ सहर में गए हैं और चाहिए कि दो तीन घड़ी में आपकी भेट को आवें क्योंकि राधिका दास जी की जुबानी आपके गुन सुने और सहस्र नाम की पोथी देखी उत्कंठा मालूम होती है और हैं कैसे 'कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः' ।

राधिकादासजी, रामकिंकर जी, तुलाराम जी, भागवतदास जी आदि उस समय बड़े प्रसिद्ध महात्मा गिने जाते थे । इन लोगों से इनसे बहुत स्नेह था, वरञ्च इन लोगों से भगवत् सम्बन्धी चुहलबाज़ी भी होती थी। एक दिन इन्हीं में से किसी महात्मा से इन्होंने कहा कि 'भगवान श्री कृष्णचन्द्र में भगवान श्री रामचन्द्र से दो कला अधिक थीं, अर्थात् इनमें सोलहों कला थीं ।" उक्त महानुभाव ने उत्तर दिया "जी हां, चोरी और जारी" । कई महात्माओं की कथा भी धूमधाम से हुई थी।

बुढ़वामङ्गल

यह हम ऊपर लिख आए हैं कि बाबू हर्षचन्द्र के समय से बुढ़वामङ्गल का कच्छा इनके यहां बहुत तयारी के साथ पटता था और बिरादरी में नेवता फिरता था, तथा गुलाबी पगडी दुपट्टा पहिर कर यावत् बिरादरी और नौकर आदि कच्छे पर आते थे। वैसी ही तयारी से यह मेला बाबू गोपालचन्द्र के समय में भी होता था। एक वर्ष कच्छे के साथ के कटर पर संध्या करने के लिये बाबू साहब आए थे और कटर के भीतर संध्या करते थे। छत पर और सब लोग बैठे थे। संध्या करके बाबू साहब ऊपर आए, सब लोग ताज़ीम के लिये खड़े हो गए। इस हल चल में नाव उलट गई और सब लोग अथाह जल में डूब गए। उस समय उसी नाव पर एक नौकर की गोद में बड़ी कन्या मुकुन्दी बीबी भी थीं। यह दुर्घटना चौसट्ठी घाट पर हुई थी। इस घाट पर चतुषष्टि देवी का मन्दिर है और होली के दूसरे दिन यहां धुरहड़ी को बहुत बडा मेला लगता है। इस घाट पर अथाह जल है और रामनगर के क़िले से टकरा कर पानी यहां आकर लगता है, इससे यहां पानी का बड़ा वेग रहता है; उसपर इनको तैरने भी नहीं आता था;—और भी आपत्ति यह कि लड़के साथ में। त्राहि भगवन, उस समय क्या बीती होगी! परन्तु रक्षा करनेवाले की बांह बड़ी लम्बी हैं। उसने सभों को ऐसा उबारा कि प्राणियों की कौन कहे, किसी पदार्थ को भी हानि

* संवत १९१४, भादों कृष्ण ८ को ग्रन्थ पूरा हुआ।